गान्धी और स्तालिन

लड़खड़ाती दुनिया के दो भिन्न मार्ग-दर्शक

लुई फ़िशर

लेखक की Gandhi and Stalin का अनुवाद
अनुवादक—श्री लेखराम

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

मूल्य पौने तीन रुपये

मुद्रक, गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली ।

प्रकाशक

राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, फैज बाजार, दिल्ली।

सूची

पहला अध्याय

संसार के सम्मुख कठिनाई क्या है ?

पिछले पचास वर्षों में उत्साहजनक प्रगति हुई है। लेकिन यह प्रगति ऐसी नहीं जिससे दुनिया को शांति और समृद्धि का विश्वास हो सके।

१९१९ और १९२० के समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ दूसरे महायुद्ध के सम्बन्ध में की गई सैकड़ों भविष्यवाणियों से भरे पड़े हैं। ये बिलकुल ही युक्ति-युक्त थीं। दूसरे महायुद्ध के चालू रहते हुए, और उसके समाप्ति के बाद से, तीसरे महायुद्ध के बारे में एक बार फिर वही चर्चा चल निकली है। प्राणी-मात्र के लिए शांति की अनिश्चितता एक बड़ी चिन्ता का कारण है।

जनरल मोटर्स कारपोरेशन के खोज-विभाग के उपाध्यक्ष तथा अमरीका में विज्ञान की उन्नति के लिए बनाई गई संस्था के प्रधान डा० चार्ल्स एफ० केटरिंग का कथन है—"हमें इतना वैज्ञानिक ज्ञान सुलभ है, जिससे कि संसार के दो अरब निवासियों में से प्रत्येक को पर्याप्त भोजन प्रदान किया जा सके।" लेकिन इसके साथ ही उनका यह भी कथन है कि संसार की तीन-चौथाई जनता अर्थात १ अरब ५० करोड़ स्त्री-पुरुष और बच्चों को खाने के लिए काफी भोजन नहीं मिलता। इस प्रकार प्राणी-मात्र की चिन्ता का दूसरा बड़ा कारण मनुष्य-निर्मित, टाली जा सकने वाली, एक गरीबी है।

अधिकांश लोग युद्ध से भयभीत और अभाव से पीड़ित हैं।

मनुष्यता संकट की भावना से ग्रसित है।

सरकारे और कूटनीतिज्ञ इस सकट की भावना का परिचय देते हैं। सुरक्षा के कठिन प्रयत्नों मे जुटा या सकट को भुलाने की चेष्टा में सलग्न प्रत्येक व्यक्ति भी व्यक्तिगत रूप मे इस भावना को व्यक्त करता है। राजनैतिक और आर्थिक सकट का भाव लोगो के मस्तिष्क, स्वास्थ्य, स्वभाव, चरित्र, व्यापार, चुनावों और कानूनों पर अपना बुरा असर डाल रहा है।

कुछ लोगो के पास इतना काफी पैसा है कि वे आर्थिक रूप में अपने-आपको सुरक्षित समझ सकें। लेकिन वे जानते है कि शान्ति अस्थायी है। ज्ञान या अर्द्ध-ज्ञान की दशा मे ऐसे लोग यह भी जानते हैं कि जब सारे संसार के लोग भूखे, नंगे, फटे-हाल और बे-घरबार हैं, उस अवस्था में अपने को बिलकुल सुरक्षित समझना उनके लिए कितनी बडी भूल है। खास तौर पर जब कि स्थिति यह है कि विज्ञान और उद्योग इन भूखे-नगे लोगों को उनकी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु मुहैया कर सकते हैं।

प्रकटतया हल न हो सकने वाली बडी-बडी समस्याओं से हड़बडा-कर तथा बडे-बडे प्रश्नों का उत्तर ढूढने में असमर्थ रहकर अरक्षित लोग या तो अनुचित रूप में अपनी इच्छाओं की पूर्ति करके अपना मनो-रंजन करने मे जुट जाते हैं या किसी ऐसे कार्य में लग जाते है जो देखने मे स्थायी निभ्रान्त और शक्ति-युक्त हो और जो बडी-बडी आशाएं बधाता हो। संकट या अरक्षितता की भावना राजनैतिक अथवा धार्मिक निरकुशता की चाहना पैदा करने वाली होती है। बहुत से दुखी व्यक्ति सुख प्राप्त करने की संभावना-मात्र पर अपनी स्वतंत्रता छोडने के लिए तत्पर हो जाते हैं। निराशा इस प्रकार एकतन्त्रवाद की स्थापना में सहायक होती है।

गरीब, अरक्षित, लाचार व निराश लोग डिक्टेटरो या तानाशाहों के आसानी से शिकार बन जाते हैं।

स्थायी शान्ति और सार्वदेशिक समृद्धि ही डिक्टेटरशिप या ताना-शाही की समाप्ति कर सकती है।

आज दुनिया संकट में है। इस संकट को सबसे अधिक पीड़ा पहु-चाने वाली कहानी करोड़ों व्यक्तियों का सुरक्षा प्राप्त करने की आशा में अपनी स्वतंत्रता और चरित्र को बलिदान करने के लिए तैयार हो जाना है। मुसोलिनी की कृपा से रेलगाड़िया समय पर चलने लगीं। फिर इस बात की चिंता कौन करे कि उसने आजादी की भावना को कुचला, अरण्डी का तेल पिलाकर अपने विरोधियों को मारा, जेलें भर दीं और हब्श-निवासियों को सभ्य बनाने के लिए विषैली गैसों का प्रयोग किया ? हिटलर ने जर्मन माताओं को राज्य की ओर से आर्थिक सहा-यता दी, बच्चों के बीमे कराये, मजदूरों को पूरा-पूरा काम दिया. देश-भक्तों को सवैतनिक छुट्टी दी और कारखानों के भोजन-गृहों में संगीत का प्रबन्ध किया, जैसी कि शेखी उसके अपने पत्र 'वोल्के वियोबाख्त' ने १९३९ के अपने नव-वर्षांक में बघारी थी। फिर जर्मनों या दूसरों को इस बात की क्या चिन्ता कि उसने एक राष्ट्र को गुलाम बनाया तथा ससार को रक्त-स्नान कराने की तैयारियां कीं ?

सब ही डिक्टेटरों या तानाशाहों के लिए फौलाद, ईंटों, तोपों, व्यवस्था तथा मुफ्त में मिले उपहारों की संख्या में वृद्धि एक गर्व, शान और अभिमान की चीज होती है। वे इनकी संख्या बढ़ाते ही चले जाते है। डिक्टेटरशिप या तानाशाही अपने नागरिकों के पेट पर पट्टी बांध उसे कसती चलती है और उन्हे आतंकित करके डराती-धमकाती रहती है। किन्तु इसके साथ ही पहाड़ी पर खिचे एक सुन्दर रंग-बिरंगे इन्द्र-धनुष की ओर भी इशारा करती चलती है, जहा कि राष्ट्रीय शक्ति और स्वर्ग का अस्तित्व बताया जाता है। इस बीच भविष्य के लाभ की आशा में लोग पेशगी के रूप में छोटी-मोटी रकमे उसे भेंट चढ़ाते रहते है। स्वेच्छाचारी के लिए एक उत्कृष्ट राज-मार्ग या एक वैज्ञानिक (मशीनी) हल बनाने वाला कारखाना अथवा लोहे को पिघलाने वाली

बिजली की भट्टी की तुलना मे व्यक्तिगत स्वतंत्रता और नैतिक सिद्धात बिलकुल ही नगण्य होते हैं।

एक दीवार खडी होती है, फिर दूसरी, इसके बाद तीसरी और फिर चौथी। शीघ्र ही भवन का निर्माण करने वाला एक कैदखाने मे बन्द हो जाता है। इस जेलखाने मे कठिन परिश्रम और झूठ के बल पर जीवन खरीदा जाता है।

यह आवश्यक नही कि निर्माण का कार्य स्वतन्त्रता की दृढ भित्ती पर ही किया गया हो। आधुनिक 'फैराओ' ने ऐसे गुलामो से 'पीरामीडों' की रचना कराई है, जो कि गुलामी की कडवाहट से परिचित होने के कारण स्वतन्त्रता के 'जोर्डन' तक पहुँचने के लिए प्रसन्नतापूर्वक ४० वर्षो तक जगल-जगल की खाक छानने को तैयार हो जायगे।

इन 'पीरामीडो' मे सुरक्षा और रहस्य के 'ममीज' हैं, लेकिन इनमे दयालुता नही। इन 'ममीज' मे शारीरिक शक्ति है, लेकिन किसी प्रकार की आचार-नीति नही। इन 'पीरामीडो' के पास मनुष्याकृति-सिंह 'स्फिनिक्स' बैठा है, लेकिन है वह बिलकुल गुम-सुम, चुप।

सुरक्षा की खोज मे राष्ट्र तोपे खरीदने के लिए मक्खन खाना छोड सकते हैं और अनैतिक लुटेरे बन जाते है। लेकिन आज वह नात्सी जर्मनी कहा है? अपने से छोटे राष्ट्रो की सुरक्षा को नष्ट कर तथा उन्हे अपने प्रभाव के क्षेत्र मे आने को मजबूर करके राष्ट्र आशिक रूप मे सुरक्षा प्राप्त कर सकते है। लेकिन बाद मे अनिवार्य रूप से इस क्षेत्र की किसी दूसरे क्षेत्र से टक्कर होती है और युद्ध के रूप मे एक-मात्र निश्चित आशा शेष रह जाती है।

व्यक्तिगत सुरक्षा ऐसी दशा मे कैसे सम्भव है, जब कि डिक्टेटर या तानाशाह की खुफिया-पुलिस आपकी आजादी छीन सकती हो? ऐसे शासन मे क्या सुरक्षा हो सकती है जिसका कोई माप-दंड न हो और इसीलिए जिसकी माप न हो सके?

फिर भी, केवल-मात्र इस दावे के कारण कि डिक्टेटरशिप या

तानाशाही निर्माण का मार्ग और सुरक्षा प्रदान करती है इसे बहुत-से क्षेत्रों में स्वीकार कर लिया गया है।

हमारे युग का संकट मुख्यतया नैतिक है। हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जिसमें स्वतन्त्रता के लिए प्रेम, उच्च नैतिक गुणों तक पहुँच रोष प्रकट करने की भावना और शक्ति तथा मनुष्य के प्रति आदर का भाव उठ चला पड़ चुका है। हमारे राजनीतिज्ञों की असफलता का कारण अन्य किसी बात की अपेक्षा इस बात में स्पष्ट है।

साको और वेनजेटी के मुकदमे और उन्हें सूली पर चढ़ा देने की घटना ने अमरीका और सारी दुनिया में हलचल मचा दी थी। ऐसी ही हलचल टॉम मूने के मुकदमे के कारण मची थी। लेकिन आज के युग के हजारों कत्लों व ढोंगी न्यायाधीशों की खबरें तक समाचारपत्रों में नहीं छपतीं। साइबेरिया में जार की खुफिया-पुलिस के गुलामों, बेल्जियन-कांगो में गुलामों से किये गए दुर्व्यवहार, कुर्दी-किसानों विनाशों तथा आरमीनिया में हुए कत्ले-आमों ने १९वीं और २०वीं सदी के प्रथम दस वर्षों में दूर-दूर के देशों में एक आक्रोशी भावना पैदा कर दी थी। लेकिन आज नजरबन्द-कैम्पों में बन्द लाखों व्यक्तियों के बारे में हम चुपचाप बैठकर विचार करें, इतना भी मुश्किल से हो पाता है। १९४२-४३ में कम-से-कम १० लाख व्यक्ति बंगाल के दुर्भिक्ष में मरे। हिटलर ने ६० लाख यहूदियों को मार डाला। इस समय चीन, भारत और यूरोप में करोड़ों व्यक्ति भूखों मर रहे हैं। टिटो, फ्रान्को, सालाजार, पेरोन और दूसरे डिक्टेटरों ने अपनी प्रजा के अधिकार समाप्त कर दिए हैं। जातीय भेद-भाव राष्ट्रीय भावना की तीव्रता के साथ ही बढ़ता चला जा रहा है।

हमारे सम्पन्न, अग्रगामी और आधुनिक संसार की दुःखान्त और अत्याचार से भरी कहानियाँ इतनी विस्तृत और विभिन्न हैं कि वे अधिकांश व्यक्तियों की दृष्टि और भावना तक से ओझल हो जाती हैं, या हम उन्हें आत्म-रक्षा की खातिर जान-बूझकर अपने मस्तिष्क से निकाल फेंकते

है। क्योंकि यदि वे सदैव हमारे मस्तिष्क मे बनी रहे, तब हमारे लिए जीना भी दूभर हो जाय। कुछ लोग अन्याचार, जुल्म और पीडा को अनुभव करने की अपनी चेतना ही खो देते हैं, उन पर इनका कोई प्रभाव नहीं पडता। इसके विपरीत कुछ लोग इन अत्याचारों को देखना तक सहन नहीं कर सकते। ऐसे भावुक लोगो का साहस टूट जाता है। या तो वे स्वयं पीडित बन जाते हैं या अज्ञान अथवा उपेक्षा की ओट मे शरण ले लेते है, या फिर केवल-मात्र अपने व्यक्तिगत जीवन में दिलचस्पी अवशेष रखकर वे छुटकारे का मार्ग ढूंढ निकालते है। अपने व्यक्तिगत जीवन के बाहर अपनी नपुंसकता और हीनता का इन लोगो को भली प्रकार ज्ञान होता है। इसीलिए राजनीति में क्रियात्मक रूप से हिस्सा न लेने तथा कष्ट-निवारण और बुराइयो को सुधारने के लिए बनाई गई संस्थाओं मे पूर्णतया सहयोग न करने की ओर झुकाव व्यापक-रूप मे देखने में आता है। इन कामो के लिए चन्दे मे छोटी-मोटी रकम या एकाध घंटा देकर हम अपने कर्त्तव्य की इतिश्री कर देते हैं। कार्य की महानता को सन्मुख रखते हुए यह तो कुछ भी न करने जैसी बात हुई।

जितनी अक्रियात्मकता बढती जाती है, समस्याएं भी उतनी ही जटिल होती जाती है। इसके साथ ही लुटेरे डिक्टेटरो और राजनैतिक धोखेबाजों के लिए शक्ति के प्रयोग तथा झूठी प्रशंसा द्वारा लोगों को बहकाने का मैदान भी व्यापक होता चला जाता है।

एक के बाद दूसरी समस्या इतनी तेजी से पैदा होती है कि आवश्यक बातों पर ध्यान केन्द्रित करना कठिन हो जाता है। कान्फ्रेंस के बाद कान्फ्रेंसे इतनी शीघ्रता से बुलाई जाती है तथा सन्धियों के मसविदे बनाने मे इतनी दिमागी शक्ति और समय खर्च होता है कि कूटनीतिज्ञ अपने निशाने को भुला बैठते है। प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के बीच का समय तथाकथित सफल कान्फ्रेंसो, शान्ति-सन्धियो, अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री के गुणो पर दिये भाषणो, निःशस्त्रीकरण सम्बन्धी बहसों तथा ऐसी प्रतिज्ञाओ से भरा पडा है जिनमें भले बनकर रहने का विश्वास

दिलाया गया था। १९२८ में युद्ध को 'गैर-कानूनी' घोषित करने वाला कैलाग-ब्रियान्ड पैक्ट, जो लोकार्नो में तैयार किया गया था, बना तथा १९३८ में म्युनिक-कान्फ्रेन्स हुई। इन सबको तैयार करने में सभी व्यस्त रहे। प्रत्येक घटना के बाद कूटनीतिज्ञों ने अपने-आपको एक दूसरे से जोड़ने का यत्न किया और आशावाद से भरे हुए भाषण दिये। लेकिन इस बीच एक दूसरे महायुद्ध की तैयारियां हो रही थीं।

अन्तर्राष्ट्रीय और घरेलू नीति के बारे में जानकारी प्रायः कान्फ्रेंसों, सन्धियों, प्रस्तावों, व्यापार, तेल सम्बन्धी रियायतों, दलों, मतों, कानूनों, कीमतों, मुनाफों, टैक्सों और नियुक्तियों आदि से प्राप्त की जाती है। इस प्रकार जानकारी प्राप्त करना गलत नहीं। लेकिन यह अधूरी रहती है यदि इसके साथ ही मनुष्य की भावनाओं और उनके नैतिक व्यवहार पर विचार न किया जाय। सर्वप्रथम राजनीति को एक ऐसे तारतम्य की आवश्यकता है जिसका आधार कोई सिद्धान्त हो। यह कहा जाता है कि एक सामाजिक विचार स्वयं तारतम्य पैदा कर लेता है। किन्तु कलाबाजी खा जाने वाले अवसरवादी विचारकों का इतिहास इस बात को असत्य सिद्ध करता है। फिर भी नैतिक सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने से ये तारतम्य बन सकता है तथा इसके साथ ही एकता भी बनी रह सकती है।

मानवता के कल्याण के लिए राजनीति और इन नैतिक सिद्धान्तों का गठ-बन्धन होना आवश्यक है। व्यक्तिगत व्यवहार में भी इन सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है। प्रायः ये दोनों एक दूसरे से अपरिचित अलग-थलग मिलते हैं। ठोस परिणाम। अर्थात 'इससे मेरा क्या लाभ होगा' इस आधार पर ही प्रत्येक बात की परख की जाती है।

डिक्टेटरशिप या तानाशाही में राजनीति और नैतिक सिद्धान्त एक दूसरे के शत्रु होते हैं। कैसा भी साधन हो, लेकिन परिणाम को देखते हुए इसे पवित्र कहा जा सकता है। परिणाम झूठ, कत्ल, और युद्धों, सबको ही पवित्र बना सकता है। लेकिन प्रजातन्त्र की परिभाषा

और निचोड के अनुसार साधनों और उपायो के सम्बन्ध मे सचेत बना रहना आवश्यक है।

जनरलिसिमो स्टालिन और महात्मा गान्धी डिक्टेटरशिप और प्रजातन्त्र के बीच के इस विरोध को उदाहरण के रूप में उपस्थित करते है। आधुनिक संसार का यह सबसे महान् विरोधाभास है।

कम्युनिस्ट डिक्टेटर, समस्त रूस के सर्वशक्तिमान् शासक, संगठन-कार्य मे अपूर्व मेधावी तथा शक्ति के स्वामी जोसेफ स्टालिन के लिए राजनीति वही है जिससे कि परिणाम तक पहुचा जा सके। इसके लिए कौनसे साधन बरते जायं, इसकी उन्हे चिन्ता नही होती। हिटलर से समझौता? नजरबन्द कैम्प? छोटे-मोटे राष्ट्रो की गुलामी? उनके लिए ये सब ही ठीक वस्तुए है, क्योंकि ये परिणाम तक पहुचाने, शक्ति दिलाने और उसे बनाए रखने के साधन है।

सन्त, राजनीतिज्ञ, भविष्य-द्रष्टा, आदर्शवादी, साम्यवादी तथा मेल-मिलाप के इच्छुक गान्धी के लिए राजनीति और ये नैतिक सिद्धान्त बिलकुल एक ही रहे है।

मनुष्यो, साधनो और वचनो के प्रति एक दूसरे से सर्वथा विपरीत रुख रखने के कारण ये दोनों व्यक्ति एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है।

गान्धी के विचारो द्वारा ससार मे शान्ति-स्थापना की सभावना की जा सकती है।

राजनीति और मूंगफली

मोहनदास करमचन्द गान्धी अंग्रेजी में एक पतला-सा साप्ताहिक पत्र निकालते हैं जिसका नाम 'हरिजन' है। इसमें वे जो लेख लिखते हैं उन पर उनका नाम रहता है और एक प्रश्नोत्तर का स्तम्भ भी इस पत्र में होता है।

मार्च १९४६ में एक मन्त्रि-मिशन, जिसमें ब्रिटिश मजदूर-सरकार के तीन प्रमुख सदस्य सम्मिलित थे, भारत को अपनी सरकार देने के बारे में समझौता करने के लिए भारत आया। ये लोग गान्धी, जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस दल के अन्य नेताओं, साथ ही मुस्लिम लीग के प्रधान मोहम्मद अली जिन्ना और बहुत से लोगों से मिले।

अन्त में, १६ मई को, मन्त्रि-मिशन ने भारत को राष्ट्रीय-विधान और एक राष्ट्रीय सरकार प्रदान करने के बारे में अपनी योजना प्रकाशित की। प्रश्न था, क्या भारतीय उस ब्रिटिश योजना को स्वीकार कर लेंगे? वास्तविक प्रश्न यह था, क्या महात्मा गान्धी इसे पसन्द कर लेंगे? क्योंकि गान्धी ही भारत में सबसे महान शक्ति हैं।

"चार दिन की कड़ी परीक्षा" में गान्धी व्यस्त रहे। इसके बाद उन्होंने सवा पृष्ठ का एक लेख मिशन की प्रशंसा और यह घोषणा करते हुए लिखा कि मिशन की योजना "वर्तमान परिस्थितियों में ब्रिटिश सरकार जो भी दस्तावेज तैयार कर सकती थी, उनमें सर्व-श्रेष्ठ है।" उन्होंने यह भी घोषणा की कि ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के सदस्य

"भारत मे बृटिश शासन की जल्दी-से-जल्दी और सुगम-से-सुगम रीति से समाप्ति के उपाय खोजने के लिए आये हैं।"

भारत के प्रत्येक समाचार-पत्र ने गान्धी के इस लेख को 'हरिजन से लेकर अपने पत्र मे छापा। यह लेख तार द्वारा उच्च अधिकारियो और कूटनीतिज्ञो की जानकारी के लिए वांशिगटन भी भेजा गया। बृटिश पत्रो मे इस लेख का पूर्ण निचोड छपा।

इंग्लैण्ड की इस इतिहास-निर्माणकारी भारत को स्वतत्र करने की घोषणा के बारे मे गान्धी के इस विश्लेषण के ठीक नीचे 'हरिजन' ने महात्मा के नाम से एक दूसरा लेख छापा। इसका शीर्षक "आम की गुठली की गिरी था। इसमे गान्धी ने इस गिरी की भोजन के रूप मे उपयोगिता की प्रशसा करते हुए इसे "अन्न और चारे का एक अच्छा बदल" बताया था। उन्होंने लिखा था कि यह अच्छा होगा "यदि आम की प्रत्येक गुठली सुरक्षित रखी जाय और उसकी गिरी को भूनकर अन्न के स्थान पर खा लिया जाय या जिन्हे इसकी आवश्यकता हो उन्हे दे दिया जाय।"

इसी तरह 'हरिजन' मे अगला लेख भी मोहनदास क० गांधी का ही था। इसमे उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की, जिसमे वे अपना बहुत-सा समय लगाते है, चर्चा की थी। इस लेख में गान्धी ने लिखा था "प्राकृतिक चिकित्सा दो भागों में बटी हुई है। बीमारियो को दूर करने का पहला उपाय राम नाम है। बीमारियों से बचने का दूसरा उपाय ठीक और सफाई से रहनेके ढ ग को बार-बार दुहरा कर अपने मस्तिष्क मे जमा लेना है ।" आगे अपनी बात की पुष्टि मे उन्होने लिखा था— "जहां पूर्ण शुद्धता हो, भीतरी और बाहरी दोनो ही, बीमारी वहां असम्भव हो जाती है।" इसके अनन्तर दूध के गुणो को बताते हुए उन्होने लिखा "भैंस का दूध गऊ के दूध की बराबरी नहीं कर सक्ता।"

'हरिजन' का यह अक उसके दूसरे अको का नमूना है और गान्धी की विशेषता बताता है। चू कि व्यक्तिगत जीवन मे उन्हे दिलचस्पी थी.

और ऐसे जीवन के बहुत-से पहलू होते हैं इसलिए गान्धी भी बहुत-से पहलुओं वाले व्यक्ति थे। 'हरिजन' के साप्ताहिक अंकों में गांधी बार-बार अपना ध्यान या तो इस ओर देते रहे कि उनके देशवासी मूंगफली का क्या-क्या उपयोग कर सकते हैं या प्रश्नों के उत्तर देने की ओर। उदाहरण के तौर पर एक औरत ने पत्र लिखकर उनसे पूछा कि वह थूकने की आदत की निंदा क्यों नहीं करते। इसके जवाब में उन्होंने लिखा कि इस आदत की उन्होंने सदैव निंदा की है और एक बार फिर निन्दा करते हैं।

एक लेख में गान्धी भारत के लिए कैसी आजादी चाहिए इसकी व्याख्या करते, दूसरे में वे मिठाई बनाने के लिए दिये जाने वाले चीनी के राशन में कमी करने की मांग करते, तीसरे में वे अपराध और अपराधियों की समस्या पर विचार करते, चौथे में वे यह आशा प्रकट करते कि स्वतन्त्र भारत में सेनाओं के रखने के विषय में नियन्त्रण से काम लिया जायगा, पांचवें में वे यह फैसला करते कि झूठ बोलना किसी भी अवस्था में उचित नहीं हो सकता—"सत्य बोलने में किसी अपवाद की स्वीकृति की गुंजाइश नहीं।"

सन्त, महात्मा, गान्धी के लिए राजनीति कोई बहुत बड़ी चीज नहीं थी और मूंगफली कोई बहुत मामूली चीज नहीं।

गान्धी की अत्यधिक आश्चर्यकारी बातों में से एक यह है कि वे प्रत्येक दिन के चौबीसों घण्टे जनता में ही व्यतीत करते थे और इसमें ही फलते-फूलते प्रतीत होते थे। उनका बिछौना एक चटाई थी, जो कि डाक्टर मेहता के औषधालय, या जहां भी वे रहते वहां, पत्थर के बने चबूतरे पर रखे तख्त पर बिछी रहती थी। यह चबूतरा खुला और जमीन से समतल होता था। कई चेले अपने गुरु के पास उसी चबूतरे पर सोते थे।

सुबह चार बजे महात्मा और उनका दल प्रार्थना करता था। इसके बाद वे नारंगी या आम का रस पीते, और अपने हाथों से पत्रों के

उत्तर लिखते थे। वे अठहत्तर वर्ष के थे—और कहते थे कि मैं एक सौ पच्चीस वर्ष जीने की आशा करता हूँ। उनका लेख स्पष्ट और दृढ था। वे अच्छी तरह देख और सुन सकते थे। प्रतिदिन एक बार राजकुमारी अमृतकौर, जो कि एक भारतीय राजघराने की ईसाई धर्मावलम्बी महिला हैं और जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषा के मुख्य सेक्रेटरी के रूप में गान्धी की सेवा करने के लिए सब कुछ त्याग दिया, उन्हें ब्रिटिश तार-एजेन्सी के छपे हुए बुलेटिनों से खबरें पढकर सुनाती थीं। वे कभी अखबार नहीं पढते और न रेडियो सुनते थे।

लेकिन फिर भी हज़ारों पत्रों और सैकडों मुलाकातों के रूप में समस्त भारत उनके सम्पर्क में आता रहा। प्रत्येक हलचल और बात-चीत तथा अन्य दूसरे कार्य महात्मा की निकल-चढी घडी[1] के जो कि हाथ से बुने सूती अधोवस्त्र के कमरबन्द के फेटे के साथ लटकी रहती थी, अनुसार होता था। वे समय के बडे पाबन्द थे। प्राय मुलाकात एक घण्टे की होती थी और ठीक अन्तिम मिनट पर वे उसे बन्द कर देते थे। इन भेंटों में बोलने का भाग प्राय उनका ही रहता था। वे बोलने में रस लेते थे। सचाई तो यह है कि वे जो भी काम करते थे सब में ही रस लेते थे, खास तौर पर बोलने, घूमने, खाने और सोने में।

१९४२ की गर्मियों में मैं गान्धी के साथ एक सप्ताह एक सुलगते हुए भारतीय गांव में रहा था। १९४६ में भी छै दिन मैंने उनके साथ व्यतीत किये। मैं सुबह साढे पांच बजे उनके साथ घूमने जाता था। पहली सुबह उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं कैसे सोया।

मैंने जवाब दिया—"बुरी तरह। एक मच्छर ने मुझे बहुत कष्ट दिया।" इसके बाद मैंने पूछा—"आप किस तरह सोये?"

"मैं सदैव अच्छी तरह सोता हूं।' उन्होंने जवाब दिया।

---

[1] यह घडी हाल ही में खो गई थी। इसके स्थान पर एक और घडी आ गई। —अनुवादक

अगली सुबह उन्होंने फिर मुझसे पूछा कि मैं कैसे सोया। मैंने जवाब दिया—

"बहुत अच्छी तरह। और आप ?"

इस पर उन्होंने कहा—"यह पूछना व्यर्थ है। मैं सदैव अच्छी तरह सोता हूं।"

तीसरी सुबह मैंने फिर उनसे पूछा—"आप कैसे सोये ?"

जवाब में उन्होंने कहा—"मैं तुम्हें कह ही चुका हूं कि यह पूछना व्यर्थ है।"

मैंने चिढ़ाया—"मैं समझता था कि आप यह भूल चुके होंगे।"

इस पर उन्होंने टिप्पणी की—"ओह ! तुम समझते हो कि मेरी हालत गिरती जा रही है। अच्छा तुम कैसे सोये ?"

मैंने तुक-में-तुक मिलाते हुए कहा—"यह पूछना व्यर्थ है।"

इसके उत्तर में गान्धी हंस दिये और बोले—"कोयल के कूकने-मात्र से वसन्त नहीं आ जाता।"

कई सुबह बूंदा-बांदी रही। मैंने आपत्ति की—"निश्चय ही आप वर्षा में घूमने नहीं जायंगे।"

"क्यों नहीं ?" उन्होंने उत्तर दिया "चलो ! बूढ़े मत बनो।"

अब वे उतना तेज नहीं चल सकते थे जितना कि चार वर्ष पूर्व, लेकिन उनके लम्बे डगों में एक उन्माद रहता था और पैंतालीस मिनट की हवाखोरी के बाद भी वे थकते नहीं थे। वे वापिस आते, दूध पीकर नाश्ता करते, लिखते, मिलने आने वालों से बात करते, बड़ी देर तक डाक्टर मेहता से मालिश कराते और तब सो जाते थे।

गान्धी सारा दिन अपने कमरे के पथरीले फर्श पर बिछी तिनकों की एक चटाई पर ही गुजार देते थे। दिन में इसी पर सोते भी थे। उनके लिए भोजन चमकते हुए चीनी के साफ बरतनों या अच्छी तरह पालिश हुए धातु के बरतनों में आता था। वे कच्चे या उबले हुए शाक, फल, दूध में उबली खजूरें, दूध में बने पदार्थों और कागज-सी पतली मार-

तीय रोटियो पर जीवन-यापन करते थे। वे डबल रोटी, अण्डे, मांस या मछली नही खाते थे और न कॉफी, चाय या शराब ही पीते थे।

गान्धी प्राय. नीची और गन्दी बस्तियो के बीच अव्यवस्थित झोपडी मे ठहरते थे। इन बस्तियो मे अछूत रहते है। धार्मिक हिन्दू आम तौर पर अछूतो से दूर ही रहते है। उनका विश्वास है कि अछूतो के सम्पर्क से वे भ्रष्ट हो जाते हैं। अछूतो के प्रति किये जाने वाले इस निर्दयतापूर्ण व्यवहार से सवर्ण हिन्दुओ को गान्धी छुटकारा दिलाना चाहते थे। इसलिए जहां सभव हो सके वहा वे उनके ही बीच रहते। फलस्वरूप सवर्ण हिन्दुओ ने अछूतो को नौकरो और कही-कही रसोइयो के रूप मे भी रखना शुरू कर दिया। भारत में सबने मुझे बताया कि अछूतो और सवर्ण हिन्दुओ के बीच जो दीवार थी वह अब गिर रही है, खासकर शहरो मे। गान्धी ने हज़ारो वर्षो से अछूतो के लिए बन्द पवित्र हिन्दू मन्दिरो को भी अपने द्वार उनके लिए खोल देने के लिए बाधित कर दिया।

"मैं अछूत हूं।" उन्होने मुझे बताया। वे जन्म से अछूत नही, वे सवर्ण हिन्दू थे। लेकिन वे अपने-आपको अछूतो से इसलिए मिलाते थे, ताकि दूसरे हिन्दू भी ऐसा ही कर सकें। इसके साथ ही उन्होने मुझसे कहा—"मैं एक हिन्दू हू, मुसलमान हूं ईसाई हू, यहूदी हूं, बौद्ध हू।"

कुछ अपवादो को छोड अधिकाश भारतीय गान्धी के सन्मुख आने पर उन्हे झुककर प्रणाम करते और प्राय उनके चरण छूते थे। आमतौर पर वे अपनी हथेली से उन्हे पीठ पर थपथपाते और पाव छूने से मना करते। तव वे पलथी मारकर फर्श पर बैठ जाते और भेंट शुरू हो जाती। घर मे कोई भी व्यक्ति आकर यह बातचीत सुन सकता था। लेकिन आम तौर पर बातचीत गान्धी और उस व्यक्ति तक ही, जिसे वे समय दे चुके होते, सीमित रहती थी।

भारतीय प्रातो के कांग्रेस-दल के प्रधान मन्त्री उनसे सलाह करने और हिदायते लेने आते थे। शिक्षा-शास्त्री अपने विचारो को कसौटी

पर कसने के लिए उनके पास आते। जिस किसी के पास कोई नई योजना होती—और भारत में कौन ऐसा है जिसके पास ऐसी योजनाएं न हों—वह उनका आशीर्वाद लेने आता। व्यक्तिगत समस्याओं के हल ढूंढने में उनकी सहायता प्राप्त करने के लिए भी अनेकों व्यक्ति उनके पास आते थे। जब मैं उनके साथ था तब एक अन्धन दम्पति ने, जो कि अपने दाम्पत्य-जीवन से असंतुष्ट था, अपनी कष्ट-कथा सुनाकर उनका बहुत-सा समय लिया। ऐसे लोगों के साथ वे कई घण्टे बिता देते थे। किसान और मजदूर भी आवश्यक आर्थिक और सामाजिक सुधार चालू कराने के लिए उनकी ही सहायता की मांग करते थे।

एक बार की भेंट में मैं उनके साथ पूना से बम्बई रेल द्वारा गया, जो कि लगभग साढ़े तीन घण्टे की यात्रा थी। वे और उनका दल, जिसमें सेक्रेटरी, कुछ भक्त और डाक्टर शामिल थे, एक स्पेशल डिब्बे में थे। यह डिब्बा तीसरे दर्जे का था और इसमें सिर्फ लकड़ी के सख्त बैंच ही बैठने के लिए थे। बारिश मूसलाधार पड़ने लगी और शीघ्र ही छत से पानी चूने लगा। फिर भी गान्धी ने 'हरिजन' के लिए एक लेख इस डिब्बे में बैठे-बैठे लिख लिया। इसके बाद एक दूसरे लेख के प्रूफ उन्होंने शोधे। फिर उन्होंने राजनैतिक नेताओं से, जो कि बात-चीत करने के लिए उनके डिब्बे में आ गए थे, बातें कीं। वर्षा होते हुए भी सब ही स्टेशनों पर उनके दर्शनार्थ भीड़ जमा थी। एक जगह गाड़ी रुकने पर १० वर्ष के दो लड़के, जिनके कपड़े पानी में बिलकुल भीगे हुए थे, खिड़की के बाहर खड़े होकर चिल्लाने लगे—"गांधी जी! गान्धी जी!!" (जी एक आदरसूचक उपसर्ग है।)

मैंने गान्धी से पूछा—"आप इनके कौन हैं?"

गान्धी ने अपनी गंजी खोपड़ी के सिरे पर दो उंगलियां खड़ी करते हुए कहा—"सींग। मैं एक ऐसा आदमी हूं जिसके सिर पर सींग हों। एक दर्शनीय वस्तु।" (वे पूर्ण अधिकार के साथ अंग्रेजी बोलते थे।)

मुझे उनकी शक्ति पर आश्चर्य हुआ। वे दस बजे से पहले निरन्तर

पर नही लेटते थे। ऐसे अवसरो पर जब कि रात विताने की तैयारी में वे चवूतरे पर लेटे होते और मैं उनके पास से गुजरता तब या तो कोई विनोदपूर्ण वातचीत हम दोनो मे होती या वे मुझसे कहते कि यदि मैं ज्यादा प्रार्थना करू तब ज्यादा अच्छी नीद सो सकू गा।

गान्धी अत्यधिक धार्मिक थे। उनके धर्म का तत्व ईश्वर मे विश्वास था। अपने-आपको वे ईश्वर का एक साधन समझते थे और अहिसा को स्वर्ग मे ईश्वर तक पहुचने, और दुनिया में सुख और शाति का मार्ग समझते थे। उनके समस्त राजनैतिक कार्य, विचार और वक्तव्य अहिसा पर आधारित होते थे।

कई वार गान्धी ने दोनो महायुद्धो के बारे मे हलका-सा उल्लेख किया था। मैंने उनसे पूछा कि वे पश्चिम को अहिंसा का उपदेश क्यो नही देते। इसके उत्तर में उन्होने हसकर कहा—"मैं तो एक साधारण एशिया-निवासी हू। बिलकुल साधारण एशिया-निवासी।' लेकिन ईसा भी एशिया-निवासी ही थे।

इसके वाद अपनी वात को जारी रखते हुए उन्होने कहा—"मैं पश्चिम को उपदेश कैसे दे सकता हूं, जव कि मै भारत को ही इसका विश्वास नही करा सका ?" वे अनुभव करते थे कि उनके देश के नवयुवको का स्वभाव हिसात्मक, अधीरतापूर्ण और क्रातिकारी है।

गाधी ने अपने जीवन को अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए अर्पित कर दिया था। परन्तु वे इस लक्ष्य को हिसा के द्वारा प्राप्त करना नही चाहते थे। उनका समाजवादियो से यही झगडा था। भारत मे वढ रहे समाजवादी आन्दोलन के पैतालीस वर्षीय नेता जयप्रकाशनारायण के बारे मे एक बार गाधी ने कहा था—"मैं उसके पैदा होने से पूर्व से ही समाजवादी हू।' जहा तक जयप्रकाश का सम्बन्ध है, उनका व्यक्तित्व चकाचौध मे डाल देने वाला है। उन्होने अमरीका के विस्कोन्सिन और ओहियो विश्वविद्यालयो मे शिक्षा पाई। शिकागो मे स्नान और शृङ्गार की

वस्तुएं बेचने के लिए घर-घर फेरी लगाई। भारत में जेलयात्रा का अपना हिस्सा भी वे पूरा कर चुके हैं। दुनिया-भर के समाजवादियों की भांति जयप्रकाश भी कम्युनिस्टों और रूस के विरोधी हैं। गान्धी उन्हें प्यार करते थे और उनमें भी गान्धी के प्रति निष्ठा है। लेकिन १९४२ के असहयोग आंदोलन के दिनों में जयप्रकाश के नेतृत्व में समाजवादियों ने हिंसात्मक उपायों को अपनाया। उन्होंने सरकारी सम्पत्ति नष्ट की, छिपा हुआ संगठन बनाया, पुलिस से अपने-आपको छिपाया और अधिकारियों के काम में जबर्दस्त बाधाएं पहुंचाईं। ये सब बातें गान्धी के अहिंसा के कानून के अंतर्गत निषिद्ध हैं। इसलिए गान्धी की समाजवादियों से नहीं बनती थी। यद्यपि जहां तक समाजवादियों की राष्ट्रीय मुक्ति की भावना का सम्बन्ध है वे इनके जनक थे और उनके अंतिम समाजवादी उद्देश्य से भी उनके विचार मिलते थे।

गान्धी जापान और नात्सियों दोनों के विरोधी थे। लेकिन वे इस के साथ ही युद्ध के भी विरोधी थे। क्योंकि उनका विचार था कि विजयी शक्तियां सैन्य-बल के आधार पर शांति स्थापित करने में असमर्थ रहेंगी। वे तात्कालिक लक्ष्य से आगे बढ़ सकते थे।

महात्मा मानवता का सदैव ध्यान रखते थे। स्वयं अपने ढंग भारत का झुकाव वे शांति के लिए शक्ति का पीछा करने की ओर देख रहे थे, जिसमें राज्य द्वारा व्यक्ति गुलाम बना लिया जायगा और व्यक्तिगत सम्पत्ति के ढेर लग जायंगे। ऐसी अवस्था में गान्धी का आर्थिक स्वर्ग खेती और घरेलू-धन्धों से आत्म-निर्भर बने गांवों और कुछ छोटे शहरों से मिलकर तैयार होगा। वे अपने-आपको गरीबों और छोटे आदमियों का हिमायती मानते थे।

अधिकांश भारतीयों के समान गान्धी के विचार भी भारत पर केन्द्रित रहते थे। भारत बीमार है और यह बात भुलाई नहीं जा सकती। यह ऐसा है मानो किसी को हृदय-रोग हो। भारतीय मुख्यतया अपनी ही समस्याओंके बारे में सोचते हैं। लेकिन गान्धी ने बात-

चीत करते हुए भारत-रूपी दर्पण में समस्त संसार दिखाई देता था। अवस्थाओं और तथ्यों के बारे में गान्धी के साथ कोई भी बातचीत क्यों न हो, वह साधारण व्यक्तियों के स्तर पर नहीं रहती थी। दो-तीन शब्दों में ही उसे वे अधिक ऊँचा उठा ले जाते और जल्दी ही आदमी यह देखता कि बातचीत का विषय इस दुनिया में मनुष्य के सामने जो अन्तिम समस्यायें हैं उनके व्यापक दार्शनिक दृष्टिकोणों की ओर परिवर्तित हो गया है।

एक अमरीकन दुर्भिक्ष-मिशन गान्धी से मिलने गया। एक सदस्य ने पूछा कि जब भारत दुर्भिक्ष के द्वार पर खड़ा है, जापान को, जो कि भूतपूर्व शत्रु देश है, भोजन देना ठीक है या नहीं? गान्धी ने इस पर उत्तर दिया—"यदि यह बात सच है कि जापानियों को भारतीयों की अपेक्षा भोजन की अधिक आवश्यकता है, तब अमरीका के पहले जापान को भोजन देना चाहिए, क्योंकि अमरीका ने जापान की आत्मा नष्ट करने का यत्न किया था।" इसके बाद उन्होंने परमाणु-बम के प्रयोग की भीषण निन्दा की। गान्धी यद्यपि राष्ट्रीय विचारों के व्यक्ति थे, लेकिन उनकी मानवता उन्हें इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्ति भी बना देती थी। फिर भी उनकी प्रथम दिलचस्पी का विषय भारत ही था।

सर स्टैफर्ड क्रिप्स से बातचीत और मूंगफली की खेती दोनों ही बातें गान्धी को एक ही लक्ष्य की ओर ले जाती थीं। यह लक्ष्य है भारत की ४० करोड़ जनता की भलाई। इसमें गान्धी ने अपने-आपको डुबा दिया था। इसीलिए वे भारत में सबसे अधिक प्रिय और फलस्वरूप सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति थे। हिन्दू एक ईश्वर की पूजा करते हैं, लेकिन वे बहुत-से छोटे ईश्वरों, देवी-देवताओं और प्रतिमाओं को भी पूजते हैं। कुछ हिन्दू मन्दिरों में गान्धी की प्रतिमाएं आज भी स्थापित हो चुकी हैं।

बम्बई के एक सुलझे हुए धनिक ने मुझे बताया था कि "स्वर्ग के

द्वार गांधी के स्वागत की प्रतीक्षा में है।' गान्धी चाहते थे कि वे प्रतीक्षा में ही रहें। वे इस दुनिया को और अधिक स्वर्ग जैसा बनाने के लिए कार्य कर रहे थे।

पूर्व इतना भूखा, चिथड़ों में लिपटा और दुखी है कि वह अपने पेट की ज्वाला को लेकर सोचता है, अपने नंगेपन में दुनिया को देखता है और अपने कष्टों की वेदना में कराहता हुआ ही सब कुछ अनुभव करता है। ये करोड़ों व्यक्ति शक्तिशाली का आतङ्क तो स्वीकार करते हैं, लेकिन अपना हृदय उन्हीं लोगों को देते हैं जो व्यक्तिगत स्वार्थों को त्याग कर अपना जीवन सार्वजनिक भलाई के कार्यों में लगा देते हैं। जीवन-भर किये जानेवाले त्याग और उत्सर्ग के गांधी प्रतीक थे। वे सर्व-साधारण भारतीयों की भांति रहते और भारत के लिए जीते थे। बहुत-से लोगों का उनसे मतभेद है। बहुत-से लोग उनके आत्म-नियन्त्रण, पूर्ण शान्ति-वाद और प्राकृतिक-चिकित्सा सम्बन्धी विचित्र विचारों को अस्वीकार करते हैं। लेकिन सब उनकी सच्चाई, बुद्धिमत्ता और सत्यनिष्ठा का आदर करते हैं। जब वे अपनी बात का आप विरोध करते थे, तब पश्चिम के लोग उन पर अस्थिर होने का लाञ्छन लगाते थे। लेकिन पूर्वी लोग इसके विपरीत कहते थे कि गांधी अपने प्रति ईमानदारी वर्त रहे हैं।

गान्धी किसी व्यापक प्रभाव का दावा नहीं करते थे। वे कहते थे—"मैं तो ईश्वर का सेवक हूं।" फिर भी बहुत-से नास्तिक अपने-आपको उनके अनुयायी कहते हैं, क्योंकि वे मनुष्य के सेवक थे। वुडरो विलसन ने एक बार लिखा था—"प्रजातन्त्र के व्यापक अर्थों में यदि लिया जाय, तब यह सरकार चलाने के एक ढङ्ग से कहीं बड़ी चीज़ सिद्ध होगा। वास्तविकता तो यह है कि यह सामाजिक संगठन की ऐसी पद्धति है, जो कि मनुष्य और मनुष्य के बीच के प्रत्येक सम्बन्ध पर अपना प्रभाव डालती है।" गांधी इस बात को अपनी प्राकृतिक सहज बुद्धि से ही समझते थे।

1363

अधिकांश लोगों के लिए राजनीति का अर्थ सरकार है। गांधी के लिए इसका अर्थ मनुष्य था। साधारण राजनीतिज्ञों का जो नमूना है ऐसे लोग तथा डिक्टेटर और तानाशाह भी अपने-आपको "सर्व-साधारण जनता का मित्र' घोषित करते है। फिर भी गाधी की जनता से दिलचस्पी केवलमात्र सामूहिक रूप मे ही नही थी, व्यक्तिगत रूप मे भी सर्वसाधारण से उनका सबध था। वे खास से आम की ओर बढते थे।

१९४६ मे बगाल के हिन्दू और मुसलमानो के बीच निर्दयतापूर्ण और खूनी लडाई व्यापक रूप मे हुई। इसके कई हजार व्यक्ति शिकार ने। महात्मा गाधी तत्काल ही झगडे के सबसे भीषण केन्द्र पूर्वी बगाल के एक मुस्लिम क्षेत्र की ओर रवाना हो गए। एक या दो साथियो के साथ यह दुर्बल और वृद्ध मनुष्य गाव-गाव घूमता फिरा। एक रात अपने यहाँ ठहराने की मुस्लिम किसानो से इन्होने प्रार्थना की। अकेले-अकेले व्यक्तियो और दलो से वे मिले और अन्तर्जातीय मैत्री के पक्ष मे उन पर बल डाला। जो लोग भी सुनने आये उन सबके साथ उन्होने प्रार्थना की और उन्हे उपदेश दिये। महीनो वे उन साधारण लोगो के बीच रहे जिन्होने कत्ल किये थे या जिनके सम्बन्धी कत्ल हुए थे। वे उनकी ही झोपडियो मे रहे, वही भोजन किया जो वे करते थे. और जैसे वे यात्रा करते थे उसी प्रकार उन्होंने भी यात्रा की। उन्हे समझने तथा उनके सुधार के लिए वे उनमे डूब गए। ऐसा अवसर उपस्थित होने पर एक साधारण राजनीतिज्ञ केवल 'सहन-शक्ति' पर एक भाषण देता और फिर वापिस घर चला जाता।

जब गांधी की पत्नी का देहान्त हुआ, तब भारतीयो ने उनके सम्मान मे एक फण्ड शुरू किया जिससे कि प्राकृतिक-चिकित्सा की उन्नति की जा सके। डा० दिनशा मेहता बहुत प्रसन्न थे। वर्षों से वे अपर्याप्त व पुराने ढङ्ग के औजारो व यन्त्रो, अपर्याप्त धन और शिक्षित सहायकों की कमी मे कार्य कर रहे थे। लेकिन गाधी ने उन्हें साफ 'नह' कही दिया। उनकी बडी दिलचस्पी एक आदर्श सस्था के

निर्माण में नहीं थी, जहां कुछ सम्पन्न लोग अपने शरीर के सुधार के लिए जाते। वे प्राकृतिक-चिकित्सा को किसानों तक पहुंचाना चाहते थे और इसे उनके आर्थिक स्तर की पहुंच के योग्य बना देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने घरेलू और सस्ते साधनों, जैसे मिट्टी की थैलियों, सूर्य-चिकित्सा, पथ्य, जल-चिकित्सा, मालिश, व्यायाम आदि द्वारा प्रयोग शुरू कर दिये। इन प्रयोगों की देख-भाल वे स्वयं करते थे।

गान्धी बहुत कुछ ऐसे ही बुनियादी क्रान्तिकारी थे, जो कि जीवन की बुराइयों की जड खींचकर उन्हें आमूल नष्ट कर देते है। बडे साहस से काम लेकर करोडों लोगों को अपने उदाहरण और शब्दों द्वारा ऊंचा उठाने और उन्हे परिवर्त्तित करने का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया था। अपने दैनिक जीवन मे अछूतों से अपने-आपको मिलाकर वे अछूत-पन के अत्याचार को दूर करने की चेष्टा करते रहे। जब हिन्दू-मुस्लिम ज्वालामुखी फूट पडता था, तब अपना खेमा वे बढते हुए दावानल के निकट ही गाडते थे। सदैव वे किसानों के निकट रहते, क्योंकि भारत किसानों का देश है।

वह मजदूर, जो कि कोयला निकालने के लिए गर्म-भरी पृथ्वी के उदर मे जाता है, महल मे रहना चाहिए। लेकिन वह झोंपडे मे रहता है। इसके विपरीत महलों मे रहने वाले उस गरीब के वेतन बढने पर भी बेचैन है। जो लोग इस तरह बेचैन है वे एक मास के लिए खान मे काम करने वाले मजदूर का जीवन व्यतीत करने का यत्न करे। घृणा से भरे वे लोग, जो कि एक भूतपूर्व-शत्रु-देश को भूखों मारना चाहते है, स्वयं प्रतिदिन बारह सौ कैलोरी पर जीवित रहकर देखें।

इस दुनिया मे जो बुराइयां मौजूद है, उनका मुख्य कारण शक्ति-वालों व शक्ति-हीनों के बीच का अन्तर है। शक्ति जिन लोगों के हाथों मे है, उन्हे चाहिए कि वे औसत नागरिक के प्रतिदिन के जीवन मे प्रविष्ट हों। इसके साथ ही औसत नागरिक को शक्ति-प्राप्त व्यक्ति की शक्ति मे हिस्सा बांटना और इस प्रकार इसे कम कर देना चाहिए। यह

बात सरकारों, राजनैतिक दलों, कारपोरेशनों, ट्रेड-यूनियनों, सचमुच सब ही मानवीय संस्थाओं पर लागू होती है। बहुत अधिक शक्ति इसका प्रयोग करने वालों तथा इससे कष्ट पाने वालों, दोनों ही के लिए अस्वास्थ्यप्रद है।

डिक्टेटर या तानाशाह के हाथ मे इसीलिए शक्ति होती है, क्योंकि समस्त बल पर उसका एकछत्र अधिकार होता है। लेकिन बिना किसी बल के गान्धी को यह शक्ति प्राप्त थी। वे न तो किसी को पुरस्कार दे सकते थे, न दण्ड। वे किसी पद पर भी आरूढ नहीं थे। वे तो अगोछा लपेटे. एक झोपडी मे रहने वाले व्यक्ति थे। ऐसी अवस्था में गाधी का प्रभाव मनुष्य के प्रति उनकी दिलचस्पी के ही कारण था।

गान्धी एक ऐसे व्यक्तिवादी व्यक्ति थे, जिनके पास पैसा नही और शक्ति भी नही थी। उनका व्यक्तिवाद कानून के अन्तर्गत रहते हुए जो कुछ मिल सकता है, वह सब लेने का अधिकार भी उन्हें नही देता था। यह व्यक्तिवाद सम्पत्ति पर आधारित नही था। इसका आधार उनका व्यक्तित्व था। इसका अभिप्राय यह है कि जब वे अपने कार्य। न्याययुक्त समझते थे तब दुनिया के विरुद्ध अकेले भी खडे हो सकते। गान्धी की परिभाषा में व्यक्तिवाद का अर्थ था बाहरी परिस्थितियों से अधिक-से-अधिक स्वतन्त्रता और भीतरी गुणों का अधिक-से-अधिक विकास।

गान्धी एक पूर्णतया स्वतत्र व्यक्ति थे।

तीसरा अध्याय

महात्मा गान्धी और जनरलिस्मिमो स्टालिन

अहिंसा के द्वारा भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के गान्धी प्रमुख प्रचारक थे। फिर भी गान्धी की अहिंसा जब जीवन में प्रयुक्त होता है, तब यह कोरे नकारात्मक अवरोध से कहीं अधिक प्रभावशाली रहती है। यह एक चकाचौंध में डालने वाली क्रांतिकारी दार्शनिकता का रूप धारण कर लेती है।

गान्धी उरली नामी एक गांव में रहते थे, जो कि एक गरीब दुखी और भारत के अन्य गांवों के नमूने का एक गांव है। एक रात इस गांव के एक किसान की झोपड़ी में चोर घुस आये और किसान का जो थोड़ा-बहुत सामान था वे चुरा ले गए। अगले दिन वह पीड़ित किसान महात्मा के सन्मुख लाया गया। प्रश्न था, अब क्या किया जाय ?

गान्धी ने कहा कि इस विषय में कार्य करने के तीन उपाय हैं। पहला उपाय "घिसा-पिसाया और पुराने ढंग का" अर्थात पुलिस को खबर करना है। उन्होंने बताया कि इसका फल प्राय केवल यह होता है कि रिश्वतखोरी के लिए पुलिस का एक और अवसर मिल जाता है। इससे पीड़ित को सहायता बहुत कम ही मिल पाती है। दूसरा उपाय यह है कि कुछ न किया जाय, जैसा कि प्राय बेचारे गरीब किसान करते हैं। गान्धी ने कहा कि "यह निन्दनीय है। इसकी जड़ में कायरता होती है। अपराध तब तक फले-फूलेंगे जब तक यह कायरता रहेगी।

चोरों से निपटने का गान्धी का उपाय अहिंसक सत्याग्रह था। इकट्ठे हुए किसानों को उन्होंने बताया कि "इसमें आवश्यकता इस बात की होती है कि चोरों और अपराधियों को भी अपने भाई और

वहन समझा जाय और अपराध को एक बीमारी माना जाय, जो कि अपराधी मे घर कर गई है और जिसका कि इलाज होना आवश्यक है।"

गान्धी ने सलाह दी कि अपराधी को कोई कार्य या व्यापार सिखाया जाय तथा अपने जीवन को परिवर्त्तित करने के साधन उसे प्रदान किये जाय। महात्मा ने कहा कि "आप लोगो को अनुभव करना चाहिए कि चोर और अपराधी आप लोगो से भिन्न कोई प्राणी नही। सचमुच यदि आप अपने भीतर प्रकाश डाले और अपनी आत्मा के निकट पहुचकर देखे तो आप पायेगे कि आप मे और चोर मे केवल कुछ अंशो-भर का अतर है। आप प्रकाश की धार भीतर की ओर करे।"

इसके अनन्तर उन्होने इस व्यापक विचार को घोषित किया—"वह धनी या पैसे वाला व्यक्ति जो कि शोषण या अन्य बुरे उपायो द्वारा पैसा पैदा करता है, डकैती या लूट के अपराध का इससे कम दोषी नही, जितना कि एक गिरह-कट या मकान मे सेंध लगाने वाला चोर। धनी केवल प्रतिष्ठा की बाहरी, दिखावटी ओट की शरण ले लेता है और कानून के दण्ड से बच निकलता है।"

गान्धी ने अपनी टिप्पणी जारी रखते हुए कहा—"यदि ठीक-ठीक कहा जाय, तो अपनी उचित आवश्यकताओं के अतिरिक्त किसी भी प्रकार पैसे का इकट्ठा करना या उसे जमा करना चोरी है। परिपूर्ण सामाजिक न्याय और धन के सम्बन्ध में बुद्धिमत्ता से काम लेकर नियम तैयार किये जायं, तो चोरी का कोई अवसर ही शेष नही रह जाय और इसीलिए चोरो को भी कोई गुंजाइश न रहे।"

इस प्रकार गान्धी की अहिसा उन्हे साम्यवाद से युक्त समाजवाद की ओर अग्रसर करती थी।

'हरिजन' के १ जून १९४७ के अंक में गान्धी ने लिखा—"आज दुनिया मे महान् आर्थिक विषमताए हैं। समाजवाद की बुनियाद आर्थिक समानताओं पर है। आज की अन्याययुक्त विषमताओं में जबकि कुछ व्यक्ति पैसे से खेलते हैं और सर्वसाधारण-जनता को खानेभर के लिए

भी पैसा नहीं मिलता, रामराज्य या ईश्वरीय शासन की स्थापना नहीं हो सकती। समाजवाद का सिद्धान्त मैं तब ही स्वीकार कर चुका था, जब कि अभी दक्षिण अफ्रीका में ही था।" इस बात को ३० साल से भी अधिक समय हो चुका था।

फिर भी, गान्धी आज के बहुत-से समाजवादियों से मतभेद रखते थे। यह मतभेद इस बात में था कि वे सरकार को नापसन्द करते थे। उन्होंने उरुली के किसानों से कहा कि 'पुलिस को खबर मत करो। एक सुधारक भेड़िया बनना स्वीकार नहीं कर सकता।"

गान्धी ने इस बात पर बल दिया कि 'जिस व्यक्ति का दिमाग मजबूरी के कारण भला बना हुआ है, उसका सुधार सम्भव नहीं। सचाई तो यह है कि ऐसा दिमाग और भी बिगड़ जाता है। जब वे मजबूरी हट जाती है, तब बुराइयाँ और भी अधिक शक्ति से बाहर फूट निकलती हैं।" डिक्टेटरशिप या तानाशाही में हमेशा ऐसी मजबूरी होती है। फलस्वरूप बुराइयां और भी विराट अपना लेती हैं और अन्त में अत्यधिक प्रमुखता धारण कर लेती है।

गांधी मनुष्य का सुधार करके पद्धति का सुधार करना चाहते थे। विश्व-समस्याओं और भारतीय समस्याओं के सम्बन्ध में उनकी पहुँच मनुष्य के व्यक्तित्व को शुद्ध और ऊंचा उठाने की दिशा में होती थी।

अपने व्यक्तिगत उदाहरण और निरंतर उपदेश द्वारा, लेकिन बिना किसी सरकार की सहायता के बल पर, गांधी भारत को एक नये ढङ्ग की व्यक्तिगत सम्मान की भावना और सामूहिक शक्ति प्रदान करने में सफल हो गए। भारतीय नारियों को राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई, एक भारतीय राष्ट्र-भाषा भी पैदा हो गई, अछूतों की स्थिति में भी सुधार हो गया तथा समस्त राष्ट्र ने युगों की निद्रा से अपने-आपको जाग्रत कर लिया। यह सब इसलिए हो सका, क्योंकि गान्धी अहिंसा के अब तक शक्ति-युक्त और सीधे-सोचे के उपाय को पूर्ण कर सके। जिसके कारण आदर्शवादियों की संदिग्धता के साथ ही इनमें क्रान्ति-

कारियों की-सी उद्विग्नता भी सम्मिश्रित हो गई।

एक दोस्त ने एक बार गांधी से पूछा कि क्या कुछ अवसरों पर यह आवश्यक हो जाता है कि "आदर्शों को स्वार्थों के सामने झुकना पड़े।" गांधी ने उत्तर दिया—"नहीं, कदापि नहीं। मै इस बात मे विश्वास नही रखता कि परिणामों से साधनों का औचित्य सिद्ध हो जाता है।" यही बात गान्धी को डिक्टेटरों और अधिकांश राजनीतिज्ञों से अलग करने वाली थी।

गान्धी कहते थे कि "मैंने अपने समस्त जीवन मे भारत की स्वतन्त्रता के लिए यत्न किया है। लेकिन यदि यह स्वतन्त्रता मुझे हिंसा द्वारा मिले, तब मै इसकी चाहना नही करूंगा।" इसके विपरीत फासिस्ट या कम्युनिस्ट अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किसी भी साधन का प्रयोग कर सकते है।

साधन प्राय मनुष्य स्वयं होता है। इसीलिए प्रजातन्त्रवादी व्यक्ति को ऊंचा उठाने की चेष्टा करता है। डिक्टेटर व्यक्ति को बलि चढा देता है। व्यक्ति की बलि डिक्टेटर उसके कथित हित के नाम पर चढाते हैं। लक्ष्य तो मनुष्य की भलाई है, लेकिन उस लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हुए अमानुषिक और नृशंस सरकारें मनुष्य को ही हड़प कर जाती हैं।

गान्धी औद्योगीकरण और बड़ी शान-बान के भी विरुद्ध थे वे। सादा देहाती जीवन पसन्द करते थे। लेकिन फिर भी रिआयत बरतते हुए वे लिखते हैं—"मैं ऐसे कारखानों को, जहाँ बहुत-से लोग मिलकर काम करते है, राज्य के अधिकार मे रखना चाहूँगा।" अपने परिश्रम के लाभ के ये लोग स्वयं मालिक होंगे। फिर भी, राज्य द्वारा हिंसा का प्रयोग नही किया जाना चाहिए। गांधी का कहना है—"मै शक्ति के बल पर धनी लोगों का पैसा छीनना पसन्द नही करूंगा, अपितु परिवर्तन-काल मे राज्य द्वारा उनकी सम्पत्ति पर अधिकार करते समय मै उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए उन्हे निमन्त्रित करूंगा। कोई भी समाज घृणित नहीं हो सकता। चाहे वह करोड़पतियों का समाज

हो या भिखमगो का। दोनों एक ही बीमारी के फोडे है।

मनुष्य के ईश्वरीय अश मे विश्वास रखते हुए, गांधी पूजीवाद व चोरी के विनाश के लिए हिंसात्मक उपायो को काम मे लाने की अपेक्षा स्वेच्छा से अपनाये उपायो को काम मे लाना पसन्द करते थे। सरकार का प्रयोग वे जितना कम हो सके उतना कम करते थे और यह प्रयोग भी अविलम्बित ऐसी बातो के समर्थन के लिए किया जाता था जिनका प्रारम्भ सर्वसाधारण जनता द्वारा किया गया हो अर्थात् जो लोकप्रिय हो। गांधी का कहना था—"मै समझता हूँ कि यदि लोग स्वय अपनी सहायता करे, तब राजनीति स्वय उनकी चिन्ता करेगी।"

इस बात मे और बहुत-सी बातो मे गांधी जनरलिस्सिमो स्टालिन से सर्वथा विपरीत छोर पर थे। बहुत थोडे-से गहरे मित्र ही जानते है कि स्टालिनका विवाह किससे हुआ है या हुआ भी है या नही। सर्वसाधारण जनता मास्को मे उनका मकान भी नही जानती। न किसी को पता है कि गाव मे उनका मकान कहा है या छुट्टियां बिताने वे कहा जाते है। जब वे यात्रा करते है तब उनकी निजी रेलगाडी का किसी को पता नही होता। वह गुप्त रखी जाती है। लोगो को पटरियो तक पर नही चलने दिया जाता। १९३२ के नवम्बर मास मे जब उनकी पहली पत्नी का देहान्त हुआ,तब शव-यात्राके समय वे शवके पीछे-पीछे मास्कोकी सडको पर से गुजरे। लेकिन इससे पूर्व ही खुफिया-पुलिस इन सडको की सफाई करा चुकी थी और मार्ग के मकानो की खिडकियो से लोग दूर ही रहे. इस काम के लिए अपने विशेष एजेण्टो को नियत कर चुकी थी।

इसके विपरीत गांधी का जीवन एक खुली पुस्तक के समान था। स्टालिन एक भारी पर्दे की ओट मे जीवन व्यतीत करते है। कोई भी डिक्टेटर या तानाशाह अपनी प्रजा के निकट सम्पर्क मे नही आता।

महात्मा चोरो का भी उपचार करने की आशा रखते थे। इसके विपरीत रूसी पार्लियामेंट क्रेमलिन ने अप्रेल १९३५ मे एक ऐसा कानून पास किया है जिससे बारह या इससे अधिक आयु के अपराधी

बालकों को मृत्यु-दण्ड दिया जा सके। गांधी नहीं चाहते थे कि उनके किसान चोरी की भी सूचना पुलिस को दें। बोल्शेविक शासन अपने पुत्रों और पुत्रियों से आशा करता है कि वे अपने माता-पिता की शिकायतें भी उन तक पहुँचा दें।

गांधी के विचारों में घृणा और द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं था। तानाशाही या डिक्टेटरशिप की बुनियाद ही घृणा और कठोर कष्ट पहुँचाने पर होती है। बोल्शेविक तानाशाही के प्रारम्भिक और अपेक्षाकृत कम कठोर दिनों में, लेनिन ने मेनशेविक नेता मारतोव और कई अन्य प्रतिद्वन्द्वियों को परामर्श दिया था कि वे गिरफ्तारी से बचने के लिए रूस छोड़कर चले जायं। लेकिन अब सोवियत यूनियन के द्वार कसकर बन्द कर दिये गए हैं। सोवियत-विरोधी किसी भी शरणार्थी को १६२७ के बाद से रूस छोड़ने की आज्ञा नहीं मिली।

स्टालिन का जन्म जार्जिया में काकेशस के जंगली, तूफानी तथा उत्साहप्रद सुन्दर पहाड़ों में हुआ है। अभी बहुत दिन नहीं हुए जब तक कि जार्जिया-निवासी आपसी खूनी लड़ाइयों में संलग्न थे। मृत्यु होने तक इन पारिवारिक लड़ाइयों की समाप्ति नहीं होती थी।

आर्थिक नीतियों का विश्व-क्रांति के प्रश्न पर मतभेद हो जाने से बहुत दिन पूर्व ही स्टालिन का ट्राट्स्की में झगड़ा हो चुका था। १६१८ से १६२१ तक लड़े जाने वाले गृह-युद्ध के समय में भी ये दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी थे। रूस में क्रांति लाने वालों में ट्राट्स्की का नाम लेनिन के नाम से जुड़ा हुआ है। सदैव "लेनिन और ट्राट्स्की" का नाम साथ-साथ लिया जाता था। ट्राट्स्की बहुत अच्छे वक्ता तथा सुन्दर भाषा लिखने वाले एक विद्वान् थे। अच्छी और व्यापक शिक्षा उन्हें मिली थी। वे दर्शन और इतिहास के पण्डित थे। फ्रेंच, जर्मन और इंगलिश वे धारा-प्रवाह के साथ बोल सकते थे। वे दुनिया को जानते थे और दुनिया भी उनको जानती थी। इसके विपरीत स्टालिन का यद्यपि १६१७ की क्रांति के शुरू करने में महत्वपूर्ण भाग था,

लेकिन ट्राटस्की की अपेक्षा यह बहुत कम था और उसमें भी कहीं कम यह प्रतीत होता था। स्टालिन इसके साथ ही साथ अच्छे वक्ता या लेखक भी नहीं। वे कोई विदेशी भाषा भी नहीं ज्ञात रखते।

मैं स्टालिन से ६ घण्टे तक बातचीत कर चुका हूँ। वे पक्के हुए, दृढ़ इच्छा-शक्ति वाले और योग्य व्यक्ति हैं। उनकी सरलता में महान् शक्ति और उनमें पूर्ण आत्म-नियन्त्रण है। साथ ही वे गम्भीर शान्त हैं। लेकिन उनमें ट्राट्स्की जैसा आकर्षण और ओज नहीं। उनकी जीत का रहस्य अपना सौंदर्य या योग्यता नहीं। वे प्रबल दल के सङ्गठन को दृढ़ बनाकर षड्यन्त्रों और चालबाजियों तथा अपनी सङ्गठन की क्षमता के बल पर चोटी पर पहुँचे हैं। वे अपने साथियों के शरीर पर पैर रखकर चोटी पर आये हैं, खासकर लियॉन ट्राट्स्की की छाती पर पैर रखकर, जिन्हें वे अत्यन्त सख्त घृणा की दृष्टि से देखते थे।

लेनिन के जीवन-काल से ही स्टालिन ने ट्राट्स्की की स्थिति को नीचा करने का यत्न शुरू कर दिया था। इसीलिए १९२४ में जब लेनिन की मृत्यु हो गई तब उनके स्वाभाविक उत्तराधिकारी ट्राट्स्की को सर्वोपरि शक्ति प्राप्त करने से रोका जा सका। सचाई यह है कि स्टालिन और उनके मित्रों ने लेनिन का अन्तिम राजनैतिक आदेश दबा लिया जिसमें अपने साथियों को लेनिन का यह आदेश था कि "स्टालिन को हटाने के लिए कोई मार्ग वे सोचें।" तीन व्यक्तियों स्टालिन, जिनोवीव और कामेनेव के संयुक्त शासन ने लेनिन के बाद सारे अधिकार अपने हाथों में सम्भाल लिये। जिनोवीव और कामेनेव की सहायता से स्टालिन ने ट्राट्स्की की ख्याति नष्ट करने का कार्य जारी रखा। इस कार्य के लिए कोई भी साधन घृणित नहीं समझा गया। लाल सेना के बारे में सोवियत रूस में पुस्तक प्रकाशित की गई। इन सबमें इन सेनाओं के सङ्गठन-कर्ता और प्रथम नायक ट्राट्स्की के नाम का एक बार उल्लेख तक नहीं किया गया।

अन्ततोगत्वा ट्राट्स्की नेतृत्व पद से हटा दिये गए। वे खुले विरोधी

दल मे आ गए । १६२६ मे उन्हे कैद कर लिया गया और वे सुदूर तुर्किस्तान मे निर्वासित कर दिये गए।

मास्को से हजारो मील दूर होजाने और रूसी गुप्त पुलिस 'जी पी. यू' के एजेण्टो से घिरे होने पर भी, ट्राट्स्की स्टालिन की परेशानी का कारण बने रहे। सेना मे तथा उन नौजवानो मे, जिन्हे युद्ध मे उन्होने उत्साह दिलाया था, और सर्वसाधारण जनता मे अब भी ट्राट्स्की की महान् प्रतिष्ठा थी। सोवियत् नेताओ को सूली पर चढा देने के दिनो से पूर्व तक यही अवस्था थी। इसलिए ट्राट्स्की टर्की मे निर्वासित कर दिये गए। इससे भी स्टालिन सतुष्ट नही हुए। उन्होने टर्की पर ट्राट्स्की को निकालने के लिए दबाव डाला। ट्राट्स्की फ्रास चले गए। स्टालिन ने फ्रेच-सरकार पर दबाव डाला और कुछ ही दिनो मे ट्राट्स्की को नौरवे जाने के लिए विवश होना पडा। नौरवे मे स्थानीय कम्युनिस्टो और अन्य सोवियत् पिट्ठुओ ने ट्राट्स्की के जीवन को कठिन बना दिया। फलत ट्राट्स्की मैक्सिको चले गए। वहाँ उनको कत्ल कर दिया गया।

जिनोवीव और कामेनेव की सहायता से ट्राट्स्की का विनाश कर देने के बाद स्टालिन ने जिनोवीव और कामेनेव को निकाल फेकने के लिए बुखारिन, राइकोव और टोमस्की से अभिसधि कर ली। एक बार लेनिन के साथ स्टालिन और कामेनेव का चित्र उतारा गया था, जिसमे स्टालिन लेनिन के एक ओर और कामेनेव दूसरी ओर थे। स्टालिन ने इस चित्र मे से कामेनेव का चित्र कटवा दिया और लेनिन के साथ अपने चित्र की लाखों प्रतिया तैयार कराकर लोगो मे प्रचारित करवाई। जिनोवीव और कामेनेव स्टालिन के अत्यन्त निकट सहयोगी थे और ये लेनिन के भी ऐसे ही निकट साथी थे, लेकिन स्टालिन ने एक ऐसी राजनैतिक ढङ्ग के कत्ल की चाल चली कि अंत मे स्थिति ऐसी पैदा हो गई कि जिनोवीव और कामेनेव को सूली पर चढा दिया गया।

बाद मे स्टालिन को जिनोवीव और कामेनेव के विरुद्ध सहायता देने वाले बुखारिन और राइकोव को भी विख्यात मास्को के मुकदमे ही

के बाद सूली पर चढ़ा दिया गया। इनके तीसरे साथी मोरिसन ट्रेड यूनियन आन्दोलन के नेता टोमस्की ने गिरफ्तार होने के पूर्व ही आत्मघात कर लिया।

स्टालिन चोटी पर पहुँच गए। नीचे उनके कठपुतले थे।

अब सर्वसाधारण जनता को स्टालिन के गुणों का विश्वास दिलाने के लिए एक क्रमबद्ध, आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया गया। हर सम्भव अवसर पर, सहस्रों अवसरों पर, स्टालिन का नाम और स्टालिन के चित्र लेनिन के नाम और चित्रों के साथ जोड़कर प्रचारित किये जाने लगे। ट्राट्स्की का स्थान स्टालिन ने ले लिया।

इस दिन के बाद से सोवियत-पद्धति को स्टालिन ही रूप दे रहे हैं। सोवियत आज्ञाओं, नीतियों, साहित्य और संस्थाओं, सब पर ही उनकी छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

गान्धी की पहचान उनके वचनों और कर्मों अर्थात उनके जीवन द्वारा होती थी।

स्टालिन की पहचान इन सब कार्यों और रूस द्वारा होती है। अपनी छाया के रूप में उन्होंने रूस की पुनर्सृष्टि की है।

स्टालिन के नेतृत्व के अन्तर्गत सोवियत यूनियन ने महान कृत्यों को पूर्ण किया है। अनेक नये शहर और बहुत-से नये, महान और आधुनिक कारखाने वहाँ तैयार हो चुके हैं। रूस एक बड़ी औद्योगिक शक्ति बन गया है। आर्थिक रूप से वह पूर्ण स्वतन्त्र नहीं। लेकिन कोई देश भी इस दिशा में स्वतन्त्र नहीं। फिर भी नये कारखाने खड़े करके और परिश्रमी रूसी वैज्ञानिकों के द्वारा खोजे गए प्राकृतिक साधनों के बल पर रूस पहले से कहीं अधिक अपने पाँव पर खड़े होने की शक्ति रखता है। द्वितीय महायुद्ध में अमरीकन उधार-पट्टे ने रूस को युद्ध जीतने में सहायता प्रदान की। लेकिन स्टालिन की नीति के अनुसार रूस में जो कारखाने स्थापित किये गए थे उनके माल के बिना, तथा पूंजी-शक्ति पर जो उन्होंने महान खर्च किया था उसके अभाव में

जर्मनी सोवियत् यूनियन को जीत लेता।

विजय के फलस्वरूप तथा स्टालिन की जबर्दस्त कूटनीति के कारण रूस ने बड़े पैमाने पर विदेशी भूमियों को अपने में सम्मिलित कर लिया है। स्टालिन ने रूस को और भी बड़ा और दृढ़ बना दिया है। इस प्रकार वे महा पराक्रमी ईवान, पीटर महान् और कैथेराईन महान् की परम्परा के अन्तर्गत आते हैं जिन्होंने रूस के साम्राज्य के विस्तार में भाग लिया और जिनकी इस कार्य के लिए रूसी साहित्य में बहुत प्रशंसा की जाती है।

इस युगांतरकारी विकास से भी कहीं अधिक ऐतिहासिक महत्व स्टालिन द्वारा रूसी कृषि को सामूहिक रूप देने के कार्य का है। प्राय: समस्त कृषि-योग्य सोवियत् भूमि राज्य के अधिकार में है। इसकी काश्त दो में से एक ढङ्ग से की जाती है। या तो ये सरकारी खेत होते हैं, जहाँ काम के हिसाब से कर्मचारियों को वेतन मिलता है और पैदा-वार सरकार की होती है या सामूहिक खेत होते हैं। सोवियत् यूनियन में लाखों समूह हैं। ये समूह ऐसे गाव होते हैं, जो कि सरकारी भूमियों और सरकारी मशीनों को उपयोग में लाते हैं और अपनी उपज का एक बड़ा हिस्सा सरकार को दे देते हैं। शेष उपज अपने कार्य के अनुपात से सामूहिक खेतों में काम करने वाले किसानों में बांट दी जाती है। इस सामूहिक खेत के अतिरिक्त प्रत्येक किसान को एक छोटा-छोटा भूमि का टुकड़ा अपने प्रयोग के लिए भी मिलता है। यह प्राय एक एकड़ से बड़ा नहीं होता। इस भूमि के टुकड़े पर शाक-सब्जी पैदा की जा सकती है। साथ ही मुर्गियाँ और सूअर भी पाले जा सकते हैं। ये वस्तुएं परिवार की अपनी खपत के लिए होती हैं। यदि कोई फालतू अर्थात् बची हुई वस्तु हो तब बाजार में बेची जा सकती है। किसी भी सामूहिक खेती करने वाले किसान को अधिकार नहीं कि वह घोड़ा बैल हल, ट्रक या ट्रैक्टर रख सके। (स्मरण रहे कि ९९ प्रतिशत से भी अधिक कृषि पर निर्भर आबादी रूस में अब तक समूहों में आ चुकी

है।) इन वस्तुओं को पूंजी माना जाता है और रूस में एक-मात्र पूंजी-पति राज्य ही है।

यूरोप में सर्फों (गुलाम-किसानों) की स्वतन्त्रता के बाद से कृषि के संगठन में प्रथम परिवर्तन यह सामूहीकरण ही है। भूमि को जोतने का यह अधिक वैज्ञानिक ढङ्ग है। सैद्धान्तिक रूप में, इसमें बड़े पैमाने पर कृषि को व्यक्तिगत प्रारम्भ या पहल से जोड़ दिया गया है। सामूहीकरण की पीठ पर यही प्रारम्भिक भावना काम कर रही थी। लेकिन स्टालिन द्वारा तैयार की गई सोवियत्-पद्धति में इस भावना को बिलकुल बदल दिया गया है। सच तो यह है कि वहां वास्तविक किसान केवल एक गुलाम और सर्फ है। वह पूर्णतया सरकार की मुट्ठी में होता है, जो कि उसे भूमि, औजार और बीज प्रदान करती है और उसकी अधिकांश पैदावार को बेचती है।

रूसी सामूहिक कृषि यद्यपि प्रगतिशील समाजवादी हलचल प्रतीत होती है, लेकिन वास्तव में यह एक सरकारी संस्था है और इसमें स्वतन्त्रता तनिक भी नहीं। रूप तो समाजवादी है, लेकिन इसमें स्टालिन की आत्मा काम कर रही है, अर्थात इस पर ऊपर और बाहर से प्रभुत्व और शासन चलता है। प्रत्येक समूह में कुछ कम्युनिस्ट क्रेमलिन की इच्छा के अनुसार लोगों को नचाते हैं।

स्टालिन के कार्य करने के ढङ्ग की प्रमुख दुर्बलताओं का चित्र रूसी समूह उपस्थित करते हैं। वहां कोई जमींदार नहीं लालची साहूकार नहीं। साधारण अवस्था में इसका फल यह होना चाहिए था कि किसान कठिन परिश्रम करते क्योंकि वे अपने लिए और एक ऐसी सरकार के लिए जो उनकी अपनी सरकार है परिश्रम कर रहे हैं। लेकिन ऐसा वहां होता नहीं। क्रेमलिन या रूसी पार्लियामेंट को विवश होना पड़ा है कि वह अधिकतर कार्य के अनुसार वेतन देने की पद्धति वहां चालू करे। समूहों में किसानों को कारखानों के मजदूरों के समान अपने श्रम के घण्टों और कार्य की कुशलता के अनुसार वेतन मिलता

है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होना चाहिए था कि कार्य करने के यत्न को पर्याप्त बल मिलता। लेकिन ऐसा वास्तव में है नहीं। फलतः हल चलाने वसन्त और शीत ऋतु की फसलों को बोने और काटने के लिए लोगों को उकसाने के लिए मास्को में बैठे सोवियत अधिकारी बड़े पैमाने पर राष्ट्र-व्यापी आन्दोलनों को सगठित करते दिखाई पड़ते हैं। किसानों को हल चलाने और बोने के लिए उकसाने का क्या अर्थ? किसानों में भूमि को जोतने, बोने और फसल इकट्ठा करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप में ही होती है। लेकिन फिर भी मास्को और लेनिनग्राड के समस्त बड़े-बड़े शहरी समाचार-पत्र तथा अन्य घने आबाद औद्योगिक शहरों के पत्र, प्रत्येक वर्ष और प्रत्येक समय देर से हल चलाने, बुआई में सुस्ती करने फसलों के खेतों में खराब होने और ट्रेक्टरों की मरम्मत न होने आदि के बारे में प्रथम पृष्ठ पर सम्पादकीय लिखकर चीखते, चिल्लाते और धमकाते दृष्टिगोचर होते है। इन सब बातों से शहरों का क्या सम्बन्ध? शहरी लोगों को और किसानों को अब क्या करना चाहिए यह बताने का क्या लाभ?

"सोवियत यूनियन के सोवियत लेखक-संघ के संचालकों द्वारा मास्को में 'साहित्यिक गज़ट' नामी एक साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित होती है। (ध्यान दीजिए कि भाग्यवश यह लेखक-संघ की पत्रिका नहीं। यह "संचालकों" की पत्रिका है।) अपने १ मार्च १९४७ के अंक में पत्रिका के पूरे चारों पृष्ठ एक ही लेख से भरे पड़े हैं। ये पृष्ठ भी हैं पूरे समाचार पत्रों के पृष्ठों के बराबर ही। यह लेख पूरे पहले पृष्ठ, सम्पूर्ण दूसरे तीसरे और सम्पूर्ण चौथे पृष्ठ को घेरे हुए है। इस एक लेख के अतिरिक्त पत्र में और कोई लेख नहीं। यह लेख सोवियत कम्युनिस्ट दल की केन्द्रीय कमेटी द्वारा पास एक प्रस्ताव की प्रति है। इस पर कोई टिप्पणी भी पत्र में नहीं। इस प्रस्ताव का शीर्षक "युद्धोत्तर काल में कृषि सम्बन्धी सुधारों के लिए उठाये गए कदमों के बारे में।'

आज्ञा दी गई थी कि सोवियत-यूनियन का प्रत्येक पत्र इस प्रस्ताव को छापे। इसीलिए 'साहित्यिक-गजट' को मार्च-अंक इस प्रस्ताव को ही देना पड़ा। पाठक तो इस प्रस्ताव को अपने दैनिक समाचार पत्रों में पढ़ चुके होंगे। लेकिन 'साहित्यिक-गजट' इसको पत्र में प्रकाशित न करने या इसको संक्षिप्त रूप में देने की हिम्मत न कर सका। 'पीरामीड' की चोटी से जारी की गई आज्ञाओं व आदेशों में परिवर्त्तन करने का दुस्साहस कोई भी नहीं कर सकता।

कृषि के सुधार से सम्बन्धित प्रस्ताव स्थानीय अधिकारियों के लिए एक ऐसा आदेश है जिसे कानून ही समझा जाना चाहिए। इसके द्वारा उन्हें आज्ञा दी गई है कि कपास, चुकन्दर, सन, घास इत्यादि की पैदावार बढ़ाने के लिए अधिक भूमि को प्रयोग में लावें, पशुओं की संख्या में वृद्धि की जावे, आब-पाशी में सुधार किये जावें, ट्रैक्टर चलाने के काम में भी उन्नति हो तथा ऐसे ही अन्य काम किये जावें। इसके अनन्तर इसमें इस बात की पुष्टि की गई है कि 'हाल के कुछ वर्षों में'' सामूहिक खेतों में बहुत-सी बातें बिगड़ चुकी हैं। इनके ठोस प्रमाण पेश करते हुए इसमें शिकायत की गई है कि "समूहों की राष्ट्रीय भूमि चोरी की जा रही है तथा समूहों की सम्पत्ति—सामान पशु, अन्य सम्पत्ति और पैसा उठाया जा रहा है।'

स्थानीय अधिकारियों को हुक्म दिया गया है कि इन बुराइयों का इलाज करें। लेकिन शायद इन खराबियों की जड़ में कम्यूनिस्ट दल के सदस्यों द्वारा समूहों पर अप्रजातन्त्रात्मक प्रभुत्व और १९२९ से १९३३ तक समूहों की हिंसात्मक रीति से सृष्टि, जब कि करोड़ों किसानों को जबर्दस्ती इच्छा या अनिच्छा से इन समूहों में सम्मिलित होने के लिए विवश किया गया था, ये सब चीजें कार्य कर रही हैं। अपना क्रोध प्रदर्शित करने के लिए उस समय इन समूहों में
किसानों ने करोड़ों पशुओं के सर काट डाले थे। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से अपने पशुओं को समूहों को सौंपने से इन्कार कर दिया था।

आज भी समूहो मे सम्मिलित किसान समूहो की सम्पत्ति और धन चोरी कर रहे है। लेकिन क्यो? स्पष्टतया इसलिए कि किसानो को जबर्दस्ती समूहो मे सम्मिलित किया गया। वे अब भी 'अपना' 'सरकार का' और 'मेरा-तेरा' का भेद रखते है। किसान समूहो मे सम्मिलित अवश्य है, लेकिन समूह की जो भावना होनी चाहिए वह उनमे कार्य नही कर रही। फिलस्तीन के यहूदी सामूहिक खेतो मे सामूहिक-सम्पत्ति या धन की चोरी एक अनसुनी बात है और इसका कोई विचार भी वहा नही कर सकता। वहा समूह एक वास्तविक वस्तु है, क्योंकि ये समूह स्वेच्छा से बने है। स्वभावतया वहा काम के अनुसार वेतन देने का प्रश्न भी नहीं उठता। प्रत्येक व्यक्ति जितना परिश्रम कर सकता है उतना करता है और परिश्रम के फल का बटवारा भी प्रत्येक व्यक्ति को एक समान मिलता है।

डिक्टेटरशिप या तानाशाही बडे-बडे कामो को कर सकती है। स्टालिन ने दस करोड किसानो को सामूहिक खेती के लिए एकत्रित कर लिया। लेकिन नाजुक कार्य करने मे यह असमर्थ है। किसानो के मनोविज्ञान की पुनर्रचना यह नही कर सकी। इसके उपाय या साधन गलत है।

'पीरामीड' की चोटी पर बैठे स्टालिन के हाथ मे समस्त अधिकार और प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ करने की शक्ति है। एक तानाशाही के लिए यह सब करना आवश्यक है, क्योकि आखिर यह ही तो तानाशाही है। फलस्वरूप सोवियत् रूस मे कोई भी कार्य ऐसा नही जो अपने आप हो सके। प्रत्येक कार्य के लिए एक "आन्दोलन" होना चाहिए। "आन्दोलन" ही वहा सब कुछ है। गेहू को बोने के लिए भी आन्दोलन चाहिए, लकडी काटने के लिए भी वहां आन्दोलन की आवश्यकता है और इन आन्दोलनो को प्रारम्भ करने और उन्हे चलाने के लिए "केन्द्र" मे अर्थात् मास्को मे जबर्दस्त शक्ति पैदा की जाती है।

शासन की कोई पद्धति किस ढग की है, इस बात का निश्चय

करने के लिए केवल यह बात देखनी आवश्यक नहीं कि भूमि और कारखानों के राष्ट्रीयकरण के प्रति इसका रुख क्या है। क्योंकि यह हो सकता है कि इन बातों के पक्ष मे होते हुए भी यह पद्धति फासिस्ट हो। निश्चय करने वाली वस्तु राजनैतिक दलों, ट्रेड-यूनियनों और अधिकारियों से इस शासन-पद्धति का सम्बन्ध है। यदि एक सरकार विश्वास करती है कि इसके शक्ति मे रहते हुए राजनैतिक दलों ट्रेड-यूनियनों और शहर तथा गांवों के स्वायत्त-शासन की अब कोई आवश्यकता नहीं, तब यह सरकार स्वेच्छाचारी सरकार हुई। भले ही कारखानों और खेतों के राष्ट्रीयकरण के लिए इसने बहुत कुछ क्यो न किया हो।

एक सरकार के ढंग का निश्चय जीवन-विहीन सम्पत्ति के प्रति इसके व्यवहार से नहीं होता बल्कि यह निश्चय जीवित लोगों के प्रति इसके व्यवहार से होता है। एक सामाजिक ढंग व्यक्तिगत-स्वामित्व से भूमि को मुक्त कर सकता है और इस मुक्त-भूमि में गुलामों को बसा सकता है। यह पूंजीपतियों के अधिकार से कारखानों को छीन सकता है और इसके साथ ही इन ही कारखानों मे मजदूरों को गुलाम बना सकता है।

भूमि-सुधार, राष्ट्रीयकरण और निर्माण-योजनाओं का अध्ययन मनुष्यों पर पड़ने वाले इनके प्रभाव की दृष्टि से किया जाना आवश्यक है।

स्टालिन के रूस की सबसे अधिक दुख-भरी असफलता राजनैतिक नियन्त्रण की मशीन मे सर्वसाधारण जनता के हिस्सा लेने का क्रमशः और अब लगभग पूर्ण अभाव है। ससदो के समान ही को-आपरेटिव दुकानें भी सरकार के नियन्त्रण मे है। वे राज्य की दुकाने है। इसी प्रकार १९३४ मे सोवियत ट्रेड-यूनियनों द्वारा की जाने वाली सामूहिक सौदे-बाजी का भी अन्त कर दिया गया। इस समय के बाद से एक कारखाने का प्रबन्धक और एक कार्यालय का संचालक मजदूरों तथा नौकरों को रखता, निकालता और बरतरफ करता है और उनके वेतन निश्चित करता है।

यह सब बातें आर्थिक प्रजातन्त्र की अस्वीकृति ही है। यह आर्थिक स्वेच्छाचारिता हुई।

कुछ समय तक सोवियतें या गांव और शहर की शासनकारिणी कौंसिलें, शासन में सर्वसाधारण जनता की पहुंच की सीढ़ियाँ थीं। इसके द्वारा सरकार से लोगों का सम्पर्क स्थापित होता था। अब ये संस्थाएं वेतन-भोगी कम्युनिस्ट अधिकारियों द्वारा शासित नौकरशाही शासन का अंग बन गई हैं। लोगों की आवाज अब नहीं सुनी जाती।

यह राजनैतिक प्रजातन्त्र की अस्वीकृति है। यह राजनैतिक स्वेच्छा-चारिता हुई, जिसके स्वेच्छाचारी शासक स्टालिन हैं।

किंडरगार्टन से लेकर विश्वविद्यालय और दूसरी विशिष्ट और उच्च संस्थाओं द्वारा सोवियत शिक्षा के तीव्र और व्यापक प्रचार के लिए भी इसी प्रकार स्टालिन को श्रेय दिया जाना चाहिए। विदेशी संवाददाता के रूप में सोवियत-यूनियन में चौदह वर्ष तक रहने के समय मैं देश के बहुत-से हिस्सों में घूमा हूं। इसी बीच मैंने धारा-प्रवाह रूसी भाषा बोलनी भी सीख ली है। प्रत्येक स्थान में मैंने शिक्षा के सम्बन्ध में नई सम्भावनाओं और प्रगति के बारे में निश्चित प्रशंसा के भाव पाये हैं। गरीब, मजदूर, किसान और पर्वतीय अनुभव करते हैं कि ज़ार के शासन में यदि वे रहते तब, अब भी अशिक्षित ही होते। लेकिन अब, जैसे कि बहुत-सी मुझइक माताओं ने मुझसे शेखी मारते हुए कहा है "मेरे लड़कों में से एक अध्यापक है, दूसरा लाल सेना का एक अफसर है और मेरी लड़की कारखाने में मुखिया (फोरमैन) है। स्वयं मैं अखबार पढ़ सकती हूं।"

सोवियत शिक्षा का उद्देश्य टेक्निकल योग्यता पैदा करना, राज्य की सेवा करना तथा रूसी नेतृत्व को बिना किसी सन्देह के स्वीकृत करना है। करोड़ों व्यक्ति लिखना और पढ़ना सीख गए हैं। लेकिन ये लोग वे बातें लिख और पढ़ नहीं सकते, जिन्हें स्टालिन पसन्द नहीं करते। विदेशी पत्रों और पत्रिकाओं के प्रचार पर रोक है। सोवियत पत्रों और पत्रिकाओं तथा सोवियत रेडियो पर भय से भरे सैन्सर करने वाले लोग कसकर लगाम लगाये रखते हैं। ऐसी ही विदेशी

पुस्तकों का अनुवाद किया जाता है जिनमें या तो सोवियत-यूनियन की प्रशंसा हो या प्रजातन्त्री राष्ट्र के जीवन के किसी अंग की आलोचना की गई हो। सोवियत-लेखक भी इसी लकीर पर चलते हैं। अन्यथा या तो उनकी चीजें प्रकाशित नहीं होतीं या कभी न समाप्त होने वाली शुद्धि में उनकी ही समाप्ति हो जाती है। ट्राट्स्की, बुखारिन, रेडक और दूसरे महान् ऐसे सोवियत बुद्धि-जीवियों के, जो कि शुद्धि के शिकार बने किसी लेख का प्रशंसा के रूप में उल्लेख, सोवियत विश्व-कोषों, इतिहास की पुस्तकों और शिक्षालयों में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों में से अत्यन्त सावधानी पूर्वक निकाल दिया जाता है। कुछ विशिष्ट पुस्तकालयों में ही स्टालिन के विरोधियों द्वारा लिखी पुस्तकें संगृहीत हैं, लेकिन सर्वोच्च अधिकारियों की आज्ञा के बिना ये पुस्तकें किसी को नहीं दी जातीं।

(कुछ लोग इसी को प्रजातन्त्र कहते हैं।)

सोवियत साहित्य, थियेटर, संगीत, मूर्त्ति-कला, भवन-निर्माण-कला और चित्रकारी में स्टालिन अत्यधिक दिलचस्पी रखते हैं। वे इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि लेखकों और कलाकारों को बहुत अच्छे वेतन मिलें। सच तो यह है कि सोवियत यूनियन में ये लोग सम्भवतः सबसे अधिक धनी प्राणी हैं। प्रायः स्टालिन ने स्वयं ही हस्तक्षेप करके उन्हें अच्छे मकान दिलाये हैं। स्वास्थ्य-वर्द्धक स्थानों में कुछ समय बिताने के लिए छुट्टियाँ दिलाने के प्रबन्ध में भी प्रायः उनका हाथ रहता है।

एक शाम अत्यन्त प्रसिद्ध रूसी संगीत-लेखक शस्तोविच द्वारा तैयार किये 'लेडी मैकबेथ ऑफ मत्सेन्स्क' नामी संगीत-प्रधान नाटक को देखने के लिए स्टालिन गये। इस संगीत-प्रधान नाटक में जारकालीन साधारण दर्जे के मध्यवित्त लोगों का उपहास किया गया था। इस समय तक इस नाटक की 'प्रवदा' और 'इज्वस्तिया' जैसे बड़े-बड़े समाचारपत्रों तथा छोटे-मोटे अन्य दैनिकों व साप्ताहिकों तथा थियेटर सम्बन्धी पत्रिकाओं में अत्यन्त शानदार आलोचनाएं निकल चुकी थीं। सोवियत अधिकारियों ने विदेशों में प्रदर्शित करते समय भी इस नाटक की प्रशंसा

सहायता की थी, जहाँ इसके पक्ष में अच्छी टीका-टिप्पणी हुई थी। जब अन्तर्राष्ट्रीय थियेटर मेला-कमेटी मास्को आई थी, तब सोवियत्-यात्रा-विभाग ने तुरन्त ही इन विदेशियों का ध्यान 'लेडी मैकवैथ ऑफ मन्सेन्स्क' की ओर आकर्षित किया था। कई सालों से यह नाटक मास्को और अन्य नगरों में लोगों की भीड़ से खचाखच भरे हुए नाटक-गृहों में दिखाया जा रहा था। लेकिन स्टालिन ने इसको पसन्द नहीं किया। अगले दिन उन्होंने 'प्रवदा' के डेविड जस्लावस्की को बुलवाया और शास्कोविच के नाटक को कर्ण-कटु और भद्दा बतलाते हुए उसकी निन्दा की। जस्लावस्की ने 'प्रवदा' में एक लेख लिखकर स्टालिन के दृष्टिकोण को लेख-बद्ध कर दिया। तुरंत ही और लोगों ने भी 'प्रवदा' के स्वर-में-स्वर मिला दिया। यद्यपि ये सब पत्र पहले 'लेडी मैकवैथ' की दिल खोलकर प्रशंसा कर चुके थे। उपरोक्त नाटक पर समस्त सोवियत् यूनियन में प्रतिबन्ध लग गया। एक रद्दी संगीतज्ञ के रूप में शास्कोविच पर आक्रमण हुए। उसकी लिखी हुई कोई चीज कई साल तक, जब तक कि प्रतिबंध उठाने की आज्ञा स्टालिन ने जारी नहीं कर दी, फिर दुबारा अभिनीत नहीं की गई।

'लेडी मैकवैथ' देखने के कुछ मासों बाद स्टालिन एक दूसरे संगीत-प्रधान नाटक को देखने गये जो कि एक युवा सोवियत् संगीतकार द्वारा तैयार किया गया था। इस संगीतकार का नाम जरजहिस्की था। स्टालिन ने इसके संगीत को पसंद किया। परिणाम यह निकला कि जरजहिस्की की दिल खोलकर प्रशंसा होने लगी।

स्टालिन की पसन्द इस प्रकार एक कानून हुई। वे कोई संगीतज्ञ नहीं। संगीत-आलोचक के रूप में भी उन्हें कोई शिक्षा नहीं मिली। लेकिन वे एक तानाशाह हैं और उनमें कोई नम्रता नहीं। चित्रकारी के सम्बन्ध में हिटलर का भी ऐसा ही आचरण होता था।

तानाशाह प्रत्येक बात में बुद्धिमान् होते हैं। सबसे अच्छे समर-नीति-विशारद, सबसे चतुर अर्थ-शास्त्री, कलाओं में निष्णात, अपने देश के

सबसे बड़े देशभक्त यह सब होना उनके लिए आवश्यक है। प्रत्येक कार्य में उनका प्रवेश जरूरी होता है।

बोरिस पिलन्याक एक प्रमुख सोवियत उपन्यासकार थे। सोवियत रूस में उनके उपन्यास 'वोल्गा कास्पियन समुद्र में गिरती है' की बड़ी बिक्री हुई। उनकी अधिकांश पुस्तकों की भी यही दशा है। एक बार उन्होंने विदेश-यात्रा के लिए सोवियत पासपोर्ट प्राप्त करने की इच्छा से आवेदन-पत्र भेजा। यह आवेदन-पत्र अस्वीकार कर दिया गया। उनकी कई पुस्तकें विदेशों में प्रकाशित हो चुकी थीं, इसलिए व्यय करने के लिए विदेशी पैसा उनके पास पर्याप्त था। फलतः उनके आवेदन-पत्र को ठुकराने का कारण पैसे की कमी नहीं हो सकता था। उन्होंने दुबारा आवेदन-पत्र भेजा और दूसरी बार उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी गई। तब उन्होंने एक संक्षिप्त पत्र स्टालिन के नाम लिखा। उसी दिन एक दूत स्टालिन का एक व्यक्तिगत पत्र लेकर उनके पास आया, जिसमें पिलन्याक की ओर से उचित अधिकारी तक पहुंच करने और इस मामले में हस्तक्षेप करने का स्टालिन ने वचन दिया था। कुछ ही दिनों में पिलन्याक को पासपोर्ट मिल गया और वे विदेश-यात्रा के लिए चल दिए।

कई अमरीकन सम्वाददाताओं ने यूराल और साइबेरिया की यात्रा की आज्ञा मांगी। विदेशी मंत्री मोलोतोफ ने इन्कार कर दिया। स्टालिन ने मोलोतोफ की आज्ञा रद्द करके यात्रा की आज्ञा दे दी।

तानाशाही या डिक्टेटरशिप के हथकण्डों में से ये कुछ हैं। "शासक" को सर्वशक्तिमान और दयालु होना आवश्यक है—जैसा कि नात्सी जर्मनी में कहा जाता था कि हिटलर को, जो भीषण घटनाएं घट रही हैं, उनका पता नहीं, अन्यथा "वह इन बातों को सहन नहीं कर सकता।" तानाशाही तानाशाह को दूसरे हर व्यक्ति से अधिक अच्छा चित्रित करने की चेष्टा करती है। कोई भी व्यक्ति तानाशाह से अधिक अच्छा होने का साहस नहीं कर सकता।

सोवियत सरकार ने बच्चों पर विशेष ध्यान दिया है। इसके साधन सीमित हैं, क्योंकि देश गरीब है। परन्तु फिर भी वह युवा-पीढ़ी को जो कुछ है उनमें से सर्वोत्कृष्ट साधन प्रदान करना चाहती है। सोवियत पायोनीयर्स जो कि रूसी स्काउट संस्था है, एक नारे का प्रयोग करती है, जो कि उनके झण्डों और मन्त्रों पर लिखा रहता है। यह इस प्रकार है—"कामरेड स्टालिन सुखी जीवन बनाने के लिए हम तुम्हारा धन्यवाद करते हैं।"

स्टालिन की प्रत्येक भाव-भंगिमा, प्रत्येक शब्द और मुस्कराहट राजनैतिक प्रभाव के लिए सावधानीपूर्वक जाँची जाती है। अगस्त १९३९ में मास्को में जब रूस-जर्मन-समझौते पर नात्सी विदेश-मंत्री फान रिब्बनट्राप और रूसी विदेश-मंत्री मोलोतोफ ने हस्ताक्षर किये तब स्टालिन भी उपस्थित थे। इससे पूर्व किसी संधि पर हस्ताक्षर करने के उत्सव के समय स्टालिन उपस्थित नहीं हुए थे। मुस्कराते हुए उनका चित्र उतारा गया। इससे रूस और दुनिया को इस बात का ज्ञान करा दिया गया कि वे प्रसन्न हैं और इस समझौते को उनकी व्यक्तिगत स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है।

अक्तूबर १९३५ को सहसा ही एक दिन मास्को से निकलने वाले 'प्रवदा' पत्र ने यह सनसनी फैलाने वाली घोषणा की कि "कामरेड जे० स्टालिन अपनी माता से मिलने टिफलिस पहुंच चुके हैं। सारा दिन माँ के साथ व्यतीत करने के बाद कामरेड स्टालिन मास्को की ओर रवाना हो गए हैं।" इस दिन के बाद से स्टालिन की मां से, जिनका पहले कभी सोवियत-पत्रों में उल्लेख तक नहीं किया जाता था, भेंट करने पत्रकार आने लगे। स्टालिन की इस यात्रा की खबर पर लेखों और सम्पादकीय टिप्पणियों में प्रसन्नता प्रकट की गई। ऐसे कम्युनिस्टों की, जो अपने बूढ़े माता-पिता की चिंता नहीं करते थे, सभाओं में निन्दा की जाने लगी। ११ दिसम्बर १९३५ के 'प्रवदा' में एक कहानी छपी, जिसमें बूढ़ी माता से दुर्व्यवहार करने का उल्लेख किया गया था।

सोवियत-नेताओं में ऐसी व्यक्तिगत बातों का प्रचार बहुत कम ही मिलेगा। प्रतीत यह होता है कि स्टालिन ने इस बात का निश्चय किया कि माता-पिताओं और बच्चों के आपसी सम्बन्धों में सुधार की आवश्यकता है। उन्हीं दिनों सोवियत नागरिकों को भी आदेश दिया गया कि वे बाजारों में चलनेवाली गाड़ियों में एक-दूसरे से नम्रता से पेश आएं। कम्युनिस्ट पतियों को अपनी त्यक्ता स्त्रियों व बच्चों की उचित देख-भाल न करने की बेशर्मी पर भी भला-बुरा कहा गया। तुरन्त ही मास्को-स्थित दल के सदस्यों ने उन स्त्रियों को, जिन्हें वे वर्षों से छोड़ चुके थे और इसके बाद वर्षों जिनका कुछ पता न लगा था टेलीफोन किया और उनसे आज्ञा मांगी कि क्या वे "छोटे लिनोचका" या "छोटे वास्का (चुन्नू-मुन्नू) को देखने आ सकते हैं? यह एक महान् परिवर्तन था, लेकिन मजबूरी के कारण।

आधुनिक स्वेच्छाचारिता का प्रवेश बैठक, सोने के कमरे और कला-कार के कला-भवन में सर्वत्र ही हो सकता है। इसके साथ ही कारखानों, कार्यालयों और खेतों में भी इसका प्रवेश है। एक ताजे सोवियत आदेश के अनुसार सोवियत-नागरिकों को विदेशी नागरिकों से विवाह करने से रोक दिया गया है। प्रत्येक तानाशाही हर परिवार में बच्चों की संख्या बढ़ाने की चेष्टा करती है। रूसी सरकार ऐसी माताओं को, जिनके दस या इससे अधिक बच्चे हों, पुरस्कार और राष्ट्रीय सम्मान देती है। इस नीति के जनक स्टालिन हैं। १९३६ में जब मैंने सोवियत स्वास्थ्य-अफसर कामिन्स्की से भेंट की और उनसे गर्भ-पात विरोधी कानून के बारे में, जिसके अनुसार गर्भ-पात गैरकानूनी घोषित कर दिया गया है, बातचीत की और गर्भ-निरोधक साहित्य और अन्य साधनों के अभाव तथा हस्पतालों में स्थान की कमी और मकानों, चादरों, कपड़ों व ऐसी ही अन्य वस्तुओं के अभाव का उल्लेख किया, तब उन्होंने कहा—"क्या करें? स्वामी अधिक बच्चे चाहते हैं।"

इस "आका" या "स्वामी" शब्द के सुनते ही सोवियत रूस में

समस्त तर्कों की समाप्ति हो जाती है। "स्वामी" या "आका" की सदैव प्रत्येक बात ठीक होती है। गांधी इसके विपरीत कहते थे—"मुझे कभी भी इस बात का पक्का निश्चय नहीं होता कि मैं ठीक हूँ।" क्योंकि उन्हे अपनी बात के ठीक होने का निश्चय नहीं गांधी सदैव सुनने और अपने मस्तिष्क को बदलने के लिए तैयार रहते थे। लेकिन तानाशाह को कठोर कड़वा और न झुकने वाला होना आवश्यक है।

गान्धी प्राय. अपने-आपको ही दोष देते थे। स्टालिन इसके विपरीत दूसरो को दोष देते है। अपने विरोधियो के प्रति गांधी उदार थे और उन्हे परिवर्तित करने का यत्न करते थे। स्टालिन उन्हे कुचल डालते है।

स्टालिन की सब आज्ञा मानते हैं।

गांधी को सब प्रेम और भक्ति की दृष्टि से देखते थे।

चौथा अध्याय

क्या रूस में स्वतन्त्रता है?

प्रजातन्त्र की विशिष्टता लोगों के आपसी विश्वास और भक्ति पर निर्भर है। यह विश्वास और भक्ति ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी सरकार का हस्तक्षेप न हो। इसके विपरीत डिक्टेटरशिप या तानाशाही में व्यक्तिगत सम्बन्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से तो अत्यन्त घनिष्ठ होते हैं, लेकिन नैतिक दृष्टिकोण से अत्यन्त छिछले। एक तानाशाही देश के नागरिकों की गर्दनों की नसें अधिकारियों की ओर बारबार ताकने के कारण अत्यन्त सुदृढ़ हो जाती हैं। तानाशाही में लगभग समस्त व्यक्तिगत सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से राज्य द्वारा प्रभावित होते हैं।

सोवियत में जो त्रुटियां हुईं, उनमें जीवनों और स्वतन्त्रता की भीषण बलि चढ़ाई गई है। किन्तु इनका सबसे अधिक विनाशकारी परिणाम मित्रता की समाप्ति हुआ है। मित्रता का आधार दृढ़ विश्वास, साफ-दिली और ईमानदारी होता है। इनकी भूख बातचीत द्वारा अपने हृदय की बात दूसरे तक पहुंचा देने से मिटती है। रूस में बोलने को बोला तो बहुत जाता है, लेकिन ऐसी हृदय की बात दूसरे तक पहुंचा देने वाली बातचीत बहुत कम होती है।

रूस में प्रमुख भक्ति राज्य के प्रति है। यदि एक मित्र तुमसे ऐसी कोई बात कहता है, जिससे शासन के सम्बन्ध में किसी सन्देह का पता चलता हो अथवा नेतृत्व के प्रति उसका विरोध प्रकट होता हो, तो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि उसकी सूचना तुम राज्य को दो। यदि इस बात का पता चल गया कि तुम यह जानते थे और तुमने इसकी सूचना

नही दी, तब तुम संकट मे पड जाओगे। यदि कोई तुम्हारा मित्र पकडा जावे—और चूकि लगभग सब ही उत्साह-भरी सरकार के लिए कार्य करते है, इसलिए कोई भी व्यक्ति गिरफ्तार हो सकता है—तब उसके बारे मे जो कुछ तुम जानते हो वह सब स्वेच्छा से बतलाना तुम्हारे लिए आवश्यक है। ऐसी स्थितियो मे विश्वास और साफ-दिली की मृत्यु हो जाती है। तुम अपने हृदय मे छिपे विचारो को अपने मित्र या अपनी पत्नी या अपने बडे पुत्र को नही बताते।

कम्युनिस्ट भी, फासिस्टो के समान, मनुष्य मे जो सबसे उत्तम चीज है उसका दुरुपयोग करते है। वे शब्दो का भी अपने मतलब के अनुसार तोड-मरोडकर दुरुपयोग करते है। एक सार्वजनिक सभा में गान्धी से कम्युनिस्टो के बारे मे कुछ टिप्पणी करने को कहा गया था। इस पर उन्होने उत्तर दिया—"प्रतीत होता है कि वे उचित और अनुचित, सत्य और झूठ के बीच किसी अन्तर को स्वीकार नही करते। उनके साथ अन्याय न हो इसलिए मै कहूगा कि इस अभियोग को वे झूठ बताते हैं, परन्तु उनके जिन कार्यो की सूचना मिली है वे इस बात का समर्थन करते प्रतीत होते है।"

मनुष्य का दुरुपयोग मानव-दासता है। शब्दो का दुरुपयोग मस्तिष्क की दासता है। दोनो ही से स्वतन्त्रता की अस्वीकृति है। जब एक प्रजातन्त्र मनुष्यो, मस्तिष्क और शब्दो की स्वतन्त्रता को सीमित कर देता है, तब वह तानाशाही के समान हो जाता है और इस प्रकार तानाशाही के विरुद्ध अपने बचाव की शक्ति मे से कुछ खो देता है।

एक प्रजातन्त्र जितना अधिक गान्धी के रग मे रगा होगा, उतना ही कम यह स्टालिन और हिटलर के रग मे रग सकेगा।

इसीलिए प्रजातन्त्रो को पत्थर के स्तूपो पर तानाशाही की विशेषताओ की एक सूची खुदवा लेनी चाहिए और इसके अन्त मे यह जोड देना चाहिए—'तू इन बातो के जाल मे नही फसेगा।"

१—अचूक नेता के सरकारी रूप मे गुण-गान। ("हिटलर जिन्दा-

वाद," "स्तालिन महान," ' ड्यूस, ड्यूस, ड्यूस, "फ्रान्को, फ्रान्को, फ्रान्को,' "टिटो, टिटो टिटो"।)

२—राजनैतिक विरोध को सहन करने की असमर्थता।

३—दण्ड देने और आतंकित करने के लिए शक्ति का बार-बार प्रयोग।

४—स्वतन्त्र विचार या कार्य करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करना। साहश्यता पर बल देना।

५—आपस में विश्वास-घातकता।

६—राज्य के प्रति निकृष्ट भक्ति पर बल।

७—विचारों के प्रति पूर्ण विश्वास। (अपना ढंग कभी भी गलत नहीं हो सकता और दूसरों का कभी ठीक नहीं हो सकता।)

८—जीवनो सुख और चरित्रों की राज्य के लिए कितनी बलि चढ़ाई जाती है, इस बात के प्रति उपेक्षा। अर्थात् एक लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अच्छे और बुरे के विचार का नितान्त अभाव।

९—पागलपन।

१०—इतिहास की उलट-पुलट।

११—देश और विदेश में अपनी पद्धति के गुणों का निरन्तर प्रचार।

१२—बाहर वालों और शासन के ढंग में विश्वास न रखने वालों पर बिना किसी प्रकार का सोच किये हमले।

१३—विदेशी आलोचनाओं पर बेचैनी।

१४—साधारण लोगों की कठोर सरकारी आलोचनाएं। लेकिन सरकार, तानाशाह या उसके प्रिय मंडल के ऊपर लोगों की, यदि वे शुद्धि के शिकार नहीं हो गए तब, किसी प्रकार की आलोचना न करना

१५—गुप्तता।

१६—नेताओं की जनता तक पहुंच न होना।

१७—बड़े बड़े धनी परिवारों को आगे बढ़ाना और उन्हें उत्साह प्रदान करना।

१८—बडी सख्या मे सशस्त्र सेनाएं रखना।

१९—विजय और विस्तार की इच्छा करना।

२०—दुर्बल प्रतीत होने का भय।

२१—घरेलू देश-भक्ति को और भी दृढ बनाने के लिए विदेशी आक्रमण के भय को बढा-चढाकर लोगो के सन्मुख उपस्थित करना।

२२—राजनैतिक पद्धति मे परिवर्त्तन करने के समय इसका विरोध।

२३—अधिकारियो का बार-बार परिवर्त्तन।

२४—व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सीमाओं मे निरतर कमी करते जाना।

२५—ट्रेड-यूनियनो को राज्य के अधीन ले आने की प्रवृत्ति।

४६—तानाशाह और खुफिया-पुलिस के अतिरिक्त शेष सब लोगो की राजनैतिक नपुसकता। व्यक्तिगत अरक्षितता या सकट का भाव।

२७—न्याय विभाग और कानून बनाने वाली धारा को राज्याधिकारियो के अधीन करना।

२८—विचारो और कानूनो की अवहेलना।

२९—जनता के ध्यान को दूसरी ओर मोडने के लिए "सरकसो," कवायदो, उत्सवो, यात्राओ, आक्रमणो आदि का उपयोग।

३०—राज्य पर व्यक्ति को पूर्णतया निर्भर बना देना।

३१—राज्य की कृपा-प्राप्ति के लिए व्यक्ति मे अत्यधिक उत्साह का होना। भले ही यह कृपा अपने हृदय को बलि चढाकर प्राप्त हो।

३२—अन्ततोगत्वा हृदय की चेतनता मे कमी होते जाना और इसके साथ ही समस्त समाज की चेतनता मे भी कमी होना।

तानाशाही की ये समस्त विशेषताए सरकार की शक्ति मे और भी वृद्धि करने वाली होती है और साथ ही व्यक्ति की लाचारी को और भी बढा देती है। —गाधी के उपदेश इससे सर्वथा विपरीत है।

दूसरी ओर प्रजातत्र का मुख्य उद्देश्य राज्य की सहायता से व्यक्ति का विकास है। किंतु इस कार्य मे राज्य पर रोक-थाम रखी

जाती है, ताकि वह व्यक्ति को कुचल या उसे निचोड़ न दे।

प्रजातन्त्र को चुनाव में बहुमत प्राप्त दल की शक्तिशाली अल्पमत से रक्षा करनी होगी। किन्तु इसके साथ ही यह बहुमत से अल्पमत की और अल्पमतों की एक दूसरे से भी रक्षा करेगा।

प्रजातन्त्र बोलने, पूजा करने, सभाएं करने और मत देने के अधिकार का नाम है। इसके साथ ही प्रजातन्त्र को काम दिलाने, मुफ्त शिक्षा देने, सामाजिक सुरक्षा और बुढ़ापे में पेन्शन देने का भी अधिकारी बनना चाहिए।

प्रजातन्त्र का अर्थ है कानून के अंतर्गत परिवर्तित न होने वाले अधिकार। रूस में व्यक्तियों को कुछ सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त हैं, किन्तु ये राज्य की ओर से पुरस्कार के रूप में मिले हैं। इसलिए राज्य इन्हें वापिस भी ले सकता है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि सोवियत के अन्तर्गत जनता के कोई अधिकार हैं ही नहीं। एक अधिकार तब तक अधिकार रहता है जब तक कि उसे कोई छीन नहीं सकता। न वहां कोर्ट कानून है। सर्वशक्तिमान राज्य, जो कि शक्ति के समस्त विरोधी स्रोतों की समाप्ति कर चुका है, कानून से ऊपर है। वह स्वयं कानून बन गया है लेकिन एक कानून तब तक ही कानून रहता है जब कि वह आम नागरिक और साथ ही सरकार पर भी लागू हो सके। ऐसी अवस्था में तानाशाही कानून-विहीन शासन होता है, जिसमें राज्य के मुकाबले में व्यक्ति बिलकुल लाचार होता है।

लाठी लिये गुफा में छिपे आदमी की शक्ति एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों पर ही चल सकती है। तानाशाह पत्रों, रेडियो, शिक्षा-पद्धति, खुफिया-पुलिस, सरकारी मशाल और नौकरियों के नियन्त्रण के द्वारा करोड़ों व्यक्तियों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है। ... प्रकार ... ... दो शिष्यों को भाड़े पर रखता था। आज का मोटर कारखाने का मालिक लाखों आदमियों को भाड़े पर रखता है। आज के एक पूंजीपति का उससे कहीं अधिक मनुष्यों पर प्रभाव हो सकता है जितना कि

मध्य-काल मे एक पूरी-की-पूरी सरकार का लोगो पर था।

सभ्यता की प्रगति के साथ औसत व्यक्ति को पहले से अधिक सरक्षण की आवश्यकता है। राज्य और बडे आर्थिक कार्यो के बिना वह लाचार है। इसके साथ ही, फिर भी यह राज्य और बडे आर्थिक कार्य मनुष्य को सर्वथा बेवसी की अवस्था तक पहुचा सकते है। आधुनिक युग की यह एक बडी उलझी हुई समस्या है।

तानाशाहियां अत्यन्त प्रबल सरकारी अधिकारी के रूप मे अपनी बुराई का प्रदर्शन करती है। प्रजातन्त्र, सरकारी या इसके किसी सदस्य की आलोचना और उसे हटा सकने के अधिकार का नाम है। यूरोप या एशिया के किसी भी तानाशाह को मतो के बल पर किसी भी समय पद से नही हटाया गया। एक-दली या विरोधी-विहीन शासन-पद्धति के अतर्गत तानाशाह को हटाना सम्भव ही नही। प्रजातत्र मे कुछ समय के बाद एक दल का स्थान दूसरे दल द्वारा ले लिया जाना एक स्वास्थ्य-वर्धक वस्तु है, भले ही प्रतिस्पर्धी दल एक दूसरे से सिद्धांतो और विश्वास की दृष्टि से बहुत भिन्न न हो, क्योकि शक्ति पर बहुत देर तक अधिकार उसके प्रयोग करने वाले को बिगाड देता है। फिर भी तानाशाह, जिनकी शक्ति असीम होती है, स्थायी स्वामी होते है। वे हा-मे-हा मिलाने वाले सहयोगियो को ही अपने साथ रखना सहन करते है। फल यह होता है कि रोग फलता-फूलता है चरित्र नष्ट हो जाता है और स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

अपनी प्रजा और ससार के सन्मुख अपनी लोकप्रियता सिद्ध करने के लिए तानाशाही चुनावो का नाटक रचती है। किंतु इन चुनावो मे यदि १० या २० या ३० प्रतिशत सरकार-विरोधी मत पडे, तब इससे विरोध और विरोधी-दल की चाहना के अस्तित्व का पता चलेगा। इस लिए इन चुनावो का सर्वसम्मत होना आवश्यक है। इसीलिए हिटलर के जर्मनी मे प्राय सब ही लोगो ने 'हा' मे मत दिया। सरकारी आन्डो के अनुसार सोवियत यूनियन मे भी ९९ प्रतिशत से भी अधिक

पचिया सरकार के पक्ष में पड़ी। १० करोड़ व्यक्तियों का किसी भी बात पर सहमत होना सम्भव नहीं। टेलीफोन आवश्यक है, स्नान करना स्वास्थ्य के लिए अच्छा है, रोटी अच्छी है, ऐसी बातों तक में वे एकमत नहीं हो सकते। निश्चय ही, यदि वे भयभीत न हों, तब सब स्टालिन के पक्ष में अपने मत नहीं दे सकते।

तानाशाही में आतंक और भय निश्चय कराने वाली वस्तु होती है। और सोवियत् आतंक प्रति वर्ष और भी अधिक विकराल रूप अपनाता चला जा रहा है। एकतन्त्रवाद (टोटेलिटेरियनिज्म) का यह नियम है—यह अधिकाधिक एकतन्त्री बनता जाता है।

बृटेन के गृहमन्त्री जेम्स सी० एडे ने एक बार कहा था—"हमारा प्रजातन्त्र अत्यन्त प्राचीन है। साथ ही उसमें हास्य का भी पर्याप्त पुट है।" किंतु एक तानाशाही हँसने के लिए कभी अपने-आपको ढीला नहीं छोड़ती। तनाव इसमें सदैव बना रहता है। इस शत्रुओं की भी आवश्यकता होती है, क्योंकि तनाव और आतंक के लिए शत्रु एक बहाना होते हैं। यदि शत्रुओं का अभाव हो तो यह उन्हें पैदा करती है और बढ़ाती है।

१९४९ में संयुक्तराष्ट्रों के अधिवेशन के अवसर पर श्रीमती फ्रैंक-लिन डी० रूजवेल्ट जो कि अमरीकन राजनैतिक नेताओं में सबसे अधिक गान्धीवादी महिला हैं, मानवीय अधिकारों के सम्बन्ध में सोवि-यत् उप-विदेश-मन्त्री एण्डेरी विशांस्की से बहस कर रही थीं। उन्होंने पूछा—"व्यक्तिगत राष्ट्र के रूप में क्या हम इतने दुर्बल हैं कि हम मनुष्यों को इस बारे में अपने विचार प्रकट करने से रोकें ? हमारी सरकार या मेरा देश ठीक ही रहेगा, इस बात का मुझे सदा निश्चय नहीं रहता। मैं इसकी आशा अवश्य करती हूँ और उसे शक्ति के अनु-सार अधिकाधिक ठीक रखने के लिए भरसक प्रयत्न भी करूँगी।" इसलिए आपने संयुक्तराष्ट्रों से माँग की कि "ऐसी बातों पर विचार किया जाय जो कि मनुष्य को अधिक स्वतन्त्र बनाती हैं। सब सरकारें

का नहीं, अपितु मनुष्य की स्वतन्त्रता का है।'

श्रीमती रूज़वेल्ट को उत्तर देते हुए विशींस्की ने कहा—"हम विरोधियों को सहन करने की नीति को स्वीकार करना नहीं चाहते।' एकतन्त्रवादियों की युक्ति का निचोड़ यही है। तानाशाह सदैव असहनशीलता के औचित्य को सिद्ध कर सकता है। वह लोगों को उन क़ुरबानियों का स्मरण दिलाता है, जो कि उन्होंने यहां तक पहुंचने के लिए की है। किंतु सचाई यह है कि तानाशाही कभी सहनशील बनना नहीं चाहती। सहनशीलता से इसका निर्वाह ही नहीं हो सकता।

क्या सोवियत् रूस में प्रजातन्त्र के उदय के कोई चिन्ह हैं? क्या कम्युनिस्ट दल के अन्दर कोई स्वतन्त्र वाद-विवाद होते हैं? १९२९ से पूर्व तक ऐसे वाद-विवाद होते थे और सोवियत् समाचार-पत्रों में इनकी कार्यवाही भी प्रकाशित होती थी। अब वहां कोई वाद-विवाद नहीं होते। क्या वहां भाषण की, सोवियत्-सरकार या स्टालिन अथवा सोवियत् विदेश-नीति की आलोचना की स्वतन्त्रता है? बिलकुल नहीं। क्या स्टालिन पूर्ण हैं और कभी भूल नहीं कर सकते? क्या यह संभव है कि सोवियत्-सरकार जो कुछ भी करती हो उसमें सदैव सफल रहती हो और इसीलिए किसी प्रकार की शिकायत की आवश्यकता न हो? स्टालिन और दूसरे कुछ उच्च नेता कई बार अपनी नीतियों को बदल चुके हैं तथा इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि बहुत-सी बातें ठीक नहीं हो रहीं। (उदाहरण के लिए १९३२ में समूहों का निर्माण)। लेकिन वे इन बातों के लिए छोटे-छोटे नीचे के आदमियों को दोष देते हैं, जिन पर आज्ञाओं को कार्यरूप में परिणत करने का भार है। प्रायः ये लोग अपनी समझ के विरुद्ध भी ऐसे कार्य करते बताये जाते हैं। फलतः इन छोटे-छोटे लोगों पर निन्दा की एक बौछार ये उच्च नेता करते हैं। लेकिन आश्चर्य की बात है कि इस निन्दा की बौछार का प्रारम्भ भी तब ही होता है, जब कि "स्वामी" या 'आका' इस कार्य के लिए बंद दरवाजों को खोल देता है। क्या रूस में ट्रेड यूनियनों को

अधिक शक्ति प्राप्त है ? क्या ये हड़तालें कर सकती हैं या सामूहिक सौदे करती हैं ? इन बातों के कोई चिन्ह नहीं। क्या रूस और बाहरी दुनिया मे आपस में अधिक सम्पर्क तथा रूस म विदेशियों से पत्र-व्यवहार की अधिक स्वतत्रता और विदेशी पत्र-पत्रिकाओं को चालू करने की छूट है ? नहीं। इसके विपरीत ये सब बात वहा और भी कम है।

सोवियतवाद के पक्ष का वचाव करने वाले केवल एक ही प्रतिबंध में कमी हो जाने की ओर इशारा कर सकते है। यह है पादरियों और गिरजों के सम्बन्ध मे। पादरियों को कम सताया जाता है। अब गिरजों में धार्मिक पाठशालाएं खोली जा सकती है तथा गिरजे साहित्य प्रकाशित कर सकते है। नास्तिकतावादी बोल्शेविक शासन बिना सुधरे पुराना कट्टर-गिरजे के पक्ष मे है। क्या ऐसा प्रजातन्त्र के कारण किया गया है? नहीं, बात इससे सर्वथा उलटी है। कुछ वर्ष पूर्व तक की सरकारी कोप-दृष्टि के कारण रूसी गिरजे सरकारी रथ में जुतने से बच गए। अब क्रेमलिन इस गिरजे का प्रयोग देश और विदेश मे राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार के लिए कर रहा है। जार ने भी यही कार्य इससे लिया था। रूसी गिरजों को भी राज्य ने अपने अन्तर्गत ले लिया। सोवियत सरकार देश की अन्तिम लोकप्रिय संस्था को भी हड़प गई। जीवन पर सरकार का प्रभुत्व अब पूर्ण हो गया है।

मार्क्स और लेनिन ने घोषणा की थी कि पूंजीपति श्रेणी की समाप्ति तथा मजदूरवर्ग के शक्ति अपने हाथ में ले लेने के अनन्तर राज्य की भी समाप्ति हो जायगी। इसके विपरीत रूसी राज्य मुरझाने के स्थान पर और भी अधिक शक्तिशाली और प्रत्येक स्थान मे विद्यमान बन गया है। आज एक नई उच्च श्रेणी, जो कि राज्य के सचालन और पैदावार के साधनों की देख-भाल करती है, मजदूर जनता का शोषण करती है। सोवियत-यूनियन में उच्चतम वेतन पाने वाले और न्यूनतम वेतन प्राप्त करने वालों के रहन-सहन में जो भीषण अन्तर है, वह किसी पूंजीपति देश मे भी महान है। स्तालिन ने एक ऐसा धर्म-वर्ग पाल लिया है

जो कि उनकी प्रबन्धक नौकरशाही क रूप मे काम देता है और जनता के खर्च पर आनन्द से रहता है किन्तु इसके हाथ मे कोई शक्ति नहीं। शक्ति स्टालिन के अपने हाथ में रहती है और खुफिया पुलिस के सहयोग से वे इस शक्ति का उपभोग करते है।

सोवियत-यूनियन स्वेच्छाचारिता का एक नमूना है।

जो लोग स्वतन्त्रता को प्यार करते हैं वे सर्वशक्तिमान् राज्य से डरते है।

ऐसे लोगो का लक्ष्य राज्य का निर्माण नही होगा। राज्य तो केवल साधन होता है। लक्ष्य मनुष्य का निर्माण होता है।

लोग प्राय आशा करते हैं कि स्टालिन की मृत्यु से अन्तर हो जायगा और शायद यह मृत्यु रूस मे प्रजातन्त्र की स्थापना मे सहायक होगी। किंतु स्टालिन तानाशाह इसीलिए हैं, चू कि तानाशाही स्टालिन जैसे व्यक्तियो को चाहती है।

स्टालिन के समस्त सहायक और उसके सभावित उत्तराधिकारी स्टालिन-पन्थी ही है। कोई भी व्यक्ति जो ऐसा न हो, वह तानाशाही मे आगे नहीं आ सकता। स्टालिन का प्रत्येक सभावित उत्तराधिकारी गान्धीवाद का अपने मे से अन्तिम अश अब तक दूर कर चुका है। दृढता से जड जमा चुकी सोवियत्-पद्धति गांधीवाद को सहन नहीं कर सकती।

क्या रूस का उन्नतिशील जीवन का धरातल देश मे प्रजातन्त्र स्थापित कर देगा? जीवनके धरातल का ऊ चा होना नेताओं द्वारा वर्तमान पद्धति के गुणों का सबूत समझा जायगा और वे लोगो को यह बात बतलायंगे।

प्राय फ्रेंच और रूसी क्राति के बारे मे समानान्तर सुझाव पेश किये जाते है—"फ्रेंच क्राति मे भी पहले आतक का राज्य था। लेकिन इसकी समाप्ति के अनन्तर स्वतन्त्रता का एक लम्बा युग उदित हो गया।'

तुलनाएं भ्रम में डाल सकती हैं। ऐतिहासिक तुलनाओं में प्रायः उन परिवर्तनों को भुला दिया जाता है, जो कि समय के परिवर्तन के कारण हो जाते हैं। तुलना द्वारा विचार करने की अपेक्षा, सहज होने वाले परिवर्तन को ध्यान में रखते हुए, तर्कसंगत विचार की प्रणाली अधिक अच्छी है।

फ्रेंच और अमरीकन क्रान्तियां 'बुर्जुआ या सम्पत्तिशाली श्रेणी' के प्रादुर्भाव तथा उस नये औद्योगिक व व्यापारी वर्ग के जन्म को बतलाती हैं, जो कि जागीरदारी वर्ग से अपना छुटकारा चाहता था। यह एक सम्पत्तिशाली वर्ग था और इसमें इतनी शक्ति थी कि शेष जनता और सरकार पर अपनी इच्छा को लाद सके। यह वर्ग स्वयं सरदार था।

इसके विपरीत आज अत्यधिक केन्द्रित और विस्तृत राज्य का युग है। यह इतना शक्तिशाली होता है कि कुछ वर्गों को कुचलकर शेष बचे हुए वर्गों पर अपना प्रभुत्व जमा सकता है। उदाहरण के रूप में नात्सी जर्मनी और सोवियत रूस को ले सकते हैं।

फ्रेंच क्रान्ति "स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे" के नारे के अन्तर्गत हुई थी।

रूस की स्वेच्छाचारिता और निरंकुशता को उसके नेता स्वतन्त्रता के नाम से पुकारते हैं। इसलिए स्वतन्त्रता के लिए वहां बहुत कम अवसर है। क्रेमलिन के नक्का समानता के विचार को 'मध्यवर्गीय वहम" कहकर उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। और भाईचारे का पता रूस और फिनलैण्ड के आपसी सम्बन्धों, स्टालिन और नजरबन्द-कैम्पों में बन्द लाखों व्यक्तियों के परस्पर व्यवहार तथा सुनहले फीते लगाये जनरलों और भद्दी फौजी पोशाक पहने साधारण सैनिकों के भेद से लग जाता है।

१९४० और १७०० के बीच समानता की कल्पना कर किसी बात की आशा करना कोरा आशीर्वाद ही है। इसका आधार इस भ्रम पर है कि एक देश एक द्वीप के समान है, दुनिया से सर्वथा अलग-थलग।

लेकिन यह बात किसी भी देश के बारे में ठीक नहीं, भले ही वह देश इतना महान् हो जैसा कि रूस। यदि यूरोप और एशिया भी तानाशाही के फन्दे में फस जायं, तो रूस मे तानाशाही की समाप्ति की सम्भावना और भी कम हो जायगी। ऐसी अवस्था में बीसवी सदी निश्चित रूप से तानाशाहों की सदी हो जायगी। इसके विपरीत यदि प्रजातन्त्र अ-सोवियत संसार मे अपने पाव दृढता से जमा लेता है, तो सोवियत ससार धीरे-धीरे अनेकों वर्षों में, अधिकाधिक प्रजातन्त्रवादी बन जायगा।

इस बात की प्रतीक्षा कि मृत्यु या विद्रोह सोवियत सरकार को बदल देगा, इस विश्वास को प्रदर्शित करता है कि अन्ततोगत्वा दूसरे लोगों को भी हमारी पद्धति को स्वीकार करना होगा—हमे केवल बैठे रहने, प्रतीक्षा और प्रार्थना करने की आवश्यकता है। किन्तु हमारी प्रजातन्त्र पद्धति पूर्ण नहीं। यह सब लोगो को शान्ति, सुरक्षा, समृद्धि या पूर्णस्वतन्त्रता प्रदान नहीं करती। यदि इसके भण्डार को और भी भर दिया जाय, तो इसके बचने का पूर्ण विश्वास हो सकता है। तब ही इसके गुण छूत की बीमारी का-सा प्रभाव रखने वाले सिद्ध होंगे। ऐसी अवस्था मे रूस मे प्रजातन्त्र का भविष्य रूस के बाहर के प्रजातन्त्र के भविष्य पर निर्भर है।

पांचवां अध्याय

हम सब पीड़ित हैं

यद्यपि साम्राज्यवाद तानाशाही का ही एक रूप है, जिसमे विदेशी शासनकर्त्ता अनिच्छुक उपनिवेश को गुलामी में रखते है, फिर भी एक प्रजातन्त्र के उपनिवेशों मे प्रजातन्त्र का अस्तित्व हो सकता है यह एक सीमित प्रजातन्त्र होगा। केवल वे ही व्यक्ति, जिन्होने एकतन्त्रवाद का कभी रसास्वादन नही किया हो, इस बात से इन्कार कर सकते है कि ब्रिटेन ने भारत को अनेक प्रकार की स्वतन्त्रताए नहीं दी। भारतीय राष्ट्रीय दलो, नेताओ और पत्रो ने निरन्तर ब्रिटिश सरकार की आलोचना की है, उस पर हमले किये हैं तथा उसे गम्भीर असुविधाए भी पहुचाई हैं। युद्धकाल में भी ऐसा किया गया है। किंतु एक एकतन्त्रवादी शासन मे ऐसी हलचलो का छोटा-सा अश भी उनके जीवन के लिए घातक हो सकता था।

बृटिश सरकार ने हजारो ऐसे भारतीयो को कैद किया, जिन्होने बृटिश नीति के विरुद्ध बोलने के अतिरिक्त कोई अपराध या किसी प्रकार का हिंसा-भरा कार्य नही किया था। राजनैतिक विचारो के लिए कैद एक ऐसा अत्याचार है, जिसे क्षमा नही किया जा सकता। फिर भी कुछ अपवादो को छोडकर कैदी जेलो से छोड दिये गए और उन्हे सूत कातने और खादी बुनने के कार्य को फिर करने की आज्ञा दे दी गई। एक प्रजातन्त्री सरकार से लडना और फिर जीवित बच रहना सभव है। लेकिन यह बात तानाशाही के बारे मे सत्य नही।

ये विचार, हिटलर के जर्मनी में रहने वाले यहूदियो के बारे मे गाधी

ने जो घोषणा की थी, उसके प्रसंग में मैं उपस्थित कर रहा हूँ। . ... १६४६ में जब मैं न्यूयार्क से भारत के लिए वायुयान द्वारा रवाना हुआ. उससे थोड़ी-सी देर पूर्व जेरूसलम के यहूदी विश्वविद्यालय के चांसलर डा० जुडा एल० मैग्नेज ने मेरा ध्यान एक पत्र की ओर आकर्षित किया जो उन्होंने १६३८ में गाधी को लिखा था। इसका उत्तर उन्हें नहीं मिला था।

अपने पत्र में मैग्नेज ने अपने-आपको गाधी का शिष्य स्वीकार करते हुए 'हरिजन' के एक लेख का उल्लेख किया था, जिसमें महात्मा ने जर्मनी के यहूदियों को "अपने मानवता-विहीन कुचलने वालों से घृणित कोप के प्रति' सत्याग्रह या अहिंसक विरोध करने की सलाह दी थी।

गाधी ने अपने लेख में लिखा था—"मैं हिटलर को गोली मारने या कैदखाने में डालने की चुनौती देता। मैं अन्य यहूदी साथियों की सत्याग्रह में अपने साथ सम्मिलित होने के लिए प्रतीक्षा न करता, अपितु मुझमें इतना विश्वास होता कि अंत में शेष सब मेरे उदाहरण का अनुकरण करने के लिए विवश होंगे स्वेच्छा से सहन किया गया कष्ट उन्हें भीतरी शक्ति और प्रसन्नता प्रदान करेगा।'

मैग्नेज ने गांधी के इस विचार को अस्वीकार किया था। उन्होंने लिखा था—"प्रतिरोध के साधारण-से लक्षण के पता चलने का अर्थ मृत्यु या नजरबंद कैम्प या अन्य किसी प्रकार से समाप्ति है।' आपने याद दिलाया "प्रायः मध्य रात्रि में यहूदी कत्ल किये जाते हैं। उनके भयभीत परिवार के अतिरिक्त किसी को जानकारी नहीं होती। इससे जर्मन-जीवन की सतह पर एक हल्की-सी लहर तक नहीं पैदा होती। वे ही गालियां रहती हैं, व्यापार भी सदैव की नाईं जारी रहता है। आकस्मिक यात्री को कुछ भी पता नहीं चल सकता। इसकी तुलना अमरीकन या ब्रिटिश कैदखाने में एक साधारण-सी भूख-हड़ताल तथा जो हलचल वहाँ सर्वसाधारण जनता में वह पैदा कर देती है, उससे कीजिए।"

मैग्नेज ने तानाशाही और प्रजातन्त्र में जो मुख्य अन्तर है उस पर

जंगली स्वरूप बना दिया है। उन्हें आशा थी कि इस बात का गांधी से उल्लेख करने का अवसर मुझे प्राप्त होगा।

पहले ही दिन, जब मैंने गांधी के साथ डा० मेहता के प्राकृतिक-चिकित्सा-भवन में समय बिताया, यह बात उपस्थित हो गई। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम दंगों का उल्लेख किया, जो कि उन दिनों अहमदाबाद शहर में हो रहे थे। उन्होंने कहा—"मुसीबत यह है कि एक पक्ष छुरा भोंकना और मारना प्रारम्भ कर देता है और तब दूसरा पक्ष भी वैसा ही करने लगता है। यदि एक पक्ष अपने आपको बलिदान के लिए छोड़ दे तब झगड़ा समाप्त हो जाय। किन्तु मैं उन्हें अहिंसक बने रहने के बारे में राजी नहीं कर सकता। ऐसा ही फिलस्तीन में है। यहूदियों का पक्ष मजबूत है। मैंने मिस्टर सिल्वरमैन (पार्लियामेंट में ब्रिटिश मजदूर दल के सदस्य) को कहा था कि फिलस्तीन में यहूदियों का पक्ष अच्छा मजबूत है। यदि अरबों का फिलस्तीन पर दावा है तो यहूदियों का दावा इससे भी पूर्व का है। ईसा यहूदी थे जिन्हें यहूदियत का सर्वस्व सुन्दर फूल समझना चाहिए। यह बात उन चार कथाओं से, जो कि उनके चार शिष्यों के द्वारा हम तक पहुँची है, हमें ज्ञात होती है। उन्हें किसी ने सिखाया-बुझाया नहीं था। उन्होंने ईसा के बारे में सचाई हमें बता दी है। किन्तु पाल यहूदी न था। वह यूनानी था। उसका मस्तिष्क व्याख्यानदाता के समान और तार्किक था। उसने ईसा के विरुद्ध बातें फैलाईं। ईसा में बड़ी शक्ति थी—प्रेम की शक्ति। किन्तु ईसाइयत जब कांस्टेंटाइन के समय में राजाओं का धर्म होगई तब यह बिगड़ गई। इसके अनन्तर धार्मिक युद्ध हुए और साधु पीटर का जन्म हुआ, जिसने ईसाइयों को सीरिया और फिलस्तीन के मुसलमानों का कत्ल करने के लिए राजी कर लिया। शाब्दिक अर्थों में युगों को नरक में धकेल दिया गया। ईसाइयत जंगली और बर्बर बन गई। सम्पूर्ण मध्यकालीन युग तक यह ऐसी ही बनी रही।"

"और अब?" मैंने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया—"अब ईसाइयत परमाणु बम द्वारा उगले हुए धुए के बादलो की चोटी पर आसीन है। फिर भी, ईसाइयत की तुलना में यहूदियत हठी और असस्कृत हैं। मैंने लन्दन में रब्बी हर्टज का भाषण सुना है। वे एक अच्छे वक्ता है। मै दक्षिण-अफ्रीका और अन्यत्र ईसाई गिरजो मे यहूदी पूजा-स्थानो की अपेक्षा अधिक बार गया हू। मै ईसाइयत को अधिक अच्छी तरह समझता हूं। किंतु फिर भी, जैसा कि मै तुम्हे बता चुका हूँ, फिलस्तीन मे यहूदियो का पक्ष मजबूत है।"

मैंने पूछा—"१६३८ या १६३६ मे आपको क्या कोई पत्र जेरूसलम के यहूदी विश्वविद्यालय के प्रधान डा० जुडाह मैग्नेज का मिला था। उन्होंने यह पत्र आपके एक वक्तव्य के अनतर लिखा था, जिस वक्तव्य मे आपने जर्मनी के यहूदियो को हिटलर के विरुद्ध मूक विरोध करने की सलाह दी थी।'

गाधी ने स्वीकार किया—"मुझे पत्र का स्मरण नही। किंतु मुझे अपना वक्तव्य याद है। मैंने मूक विरोध की सलाह नही दी थी। बहुत वर्ष हुए, दक्षिण अफ्रीका मे एक बडी सार्वजनिक सभा मे, जो कि जोहासबर्ग के एक धनी यहूदी हरमन कालेनबाक की प्रधानता मे हुई थी, मैंने भाषण दिया था। प्राय मै उनके घर ठहरता था और मेरी उनसे घनिष्ठता हो गई थी। उन्होंने मेरा परिचय मूक विरोध के सर्वश्रेष्ठ नायक के रूप मे दिया। मै खडा हुआ और मैंने कहा कि मैं मूक विरोध मे विश्वास नही रखता। सत्याग्रह तो एक अत्यन्त क्रियाशील वस्तु है। झुक जाना निष्क्रियता है और मै झुकने को नापसंद करता हूं। जर्मनी के यहूदियो ने हिटलर के सामने आत्म-समर्पण करने की भूल की है।"

मैंने कहा—"डा० मैग्नेज़ ने अपने पत्र मे यह तर्क उपस्थित किया था कि यहूदी और कुछ नही कर सकते थे।"

गान्धी ने गम्भीरतापूर्वक स्वीकार किया—"हिटलर ने पचास लाख

यहूदियों को क़त्ल कर दिया है। हमारे समय का यह सबसे महान् अत्याचार है। किन्तु यहूदियों को चाहिए था कि वे स्वयं कातिल के छुरे के नीचे अपने सिरों को रख देते। चोटी पर से उन्हें अपने-आपको स्वयं समुद्र में गिरा देना चाहिए था। मैं हारा-कीरी (आत्म-घात) में विश्वास रखता हूँ। मैं इसके फ़ौजी परिणामों में विश्वास नहीं रखता, किन्तु यह एक वीरतापूर्ण उपाय है।"

इस पर मैंने पूछा—"क्या आप सोचते हैं कि यहूदियों को सामूहिक आत्म-घात कर लेना चाहिए था ?"

"हाँ !" गान्धी ने स्वीकार किया—"यह वीरता की बात होती। इससे संसार और जर्मनी के लोग हिटलर की हिंसा की बुराई के प्रति जागृत हो जाते। विशेषतया युद्ध से पूर्व १९३८ में ऐसा होना ही चाहिए था। वर्तमान अवस्था में भी आखिर वे लाखों की संख्या में मर ही गए।"

जब मैंने डा० मेग्नेज़ को इस बातचीत की सूचना दी, तब उन्होंने कहा—"हो सकता है कि गान्धी यह विचारने में ठीक ही हों कि यदि यहूदियों ने आत्म-घात कर लिया होता, तो वे संसार को उससे कहीं अधिक प्रभावित कर सकते थे जितना कि साठ लाख जीवनों को गँवाकर उन्होंने उसे प्रभावित किया है। फिर भी मैं यह नहीं सोच सकता कि संसार में इस प्रकार का क़दम उठाना किस प्रकार सम्भव हो सकता है। मस्सादा के किले में घिरे कुछ सौ व्यक्ति आत्म-हत्या करने में समर्थ थे, क्योंकि वे एक ही स्थान में बन्द थे और एक शत्रु-सेना से उनका मुक़ाबिला था। साठ लाख या दस लाख या एक लाख व्यक्ति किस प्रकार ऐसा कार्य कर सकते हैं ? और यदि उन्होंने ऐसा किया भी होता तो क्या इसका प्रभाव संसार पर साठ लाख जीवनों की समाप्ति की अपेक्षा अधिक चिरस्थायी होता ?"

महात्मा गान्धी एक पूर्णतया एकतन्त्रवादी शासन के अन्तर्गत कभी नहीं रहे। उनकी उदारता और मानवता उन्हें इस बात के

अनुभव करने मे कठिनाई उपस्थित कर देती है कि तानाशाही कितनी निर्दय और निर्मम हो सकती है । भारत, फिलस्तीन तथा अन्य स्थानों मे हिंसा या संगठित अहिंसा "जन-सम्पर्क" का एक रूप है । जब अमरीकनो, अंग्रेजो, फ्रासीसियो या स्विडो की इच्छा सरकारी नीति पर प्रभाव डालने की होती है, तब वे राजनैतिक चर्चा करते हैं, तार देते हैं, लिखते हैं, मत डालते हैं, कूंच करते है या हडताले करते है । औपनिवेशक ऐशिया मे विरोध प्रदर्शित करने वाले, जिनके मत नीति का निर्माण नहीं कर सकते, उपद्रव मचाते हैं, छुरे चलाते है, गोली मारते हैं या लूटते है । विरोध प्रदर्शित करने वालो का उद्देश्य बृटिश नीति मे परिवर्त्तन कराना होता है, जिसमे समय-समय पर वे ऐसा करने मे सफल भी हुए है । पूर्व मे गडबड होने से लन्दन मे पार्लियामैंट मे, समाचार-पत्रो मे, राजनैतिक दलो मे और गिरजो मे, प्रतिक्रिया पैदा होती है । सरकार पर इतना जबर्दस्त दवाव पडता है कि उसे सार्वजनिक रूप मे अपने आलोचको को उत्तर देने के लिए वाध्य होना पडता है और कई वार अपनी नीति भी वदलनी पडती है ।

इस प्रकार गान्धी की अहिंसा और इसके साथ ही इसकी भद्दी उलट यहूदी आतक,इग्लैण्ड मे (और अमेरिका मे), एक स्वतत्र प्रजातन्त्रीय समाज के अस्तित्व के सूचक हैं । जनमत के इस न्यायालय के सन्मुख ही भारत के सत्याग्रहियों और फिलस्तीन के अपहरणकर्त्ताओ ने अपनी प्रार्थनाए पेश की हैं । किन्तु यदि यह मान लिया जाय कि पश्चिमी राष्ट्रो मे कोई प्रजातन्त्र नही, तब क्या हो ?

एक बृटिश प्रधानमन्त्री दस लाख आदमियो को अपने घरो और वाजारो से वाहर घसीटकर उन्हे आग से सुलगती हुई भट्टियो मे साबुन के साथ पिघलाने की आज्ञा नही दे सकता । हिटलर ऐसी आज्ञा दे सकता था और उसने दी भी ।

जेनेट नामी एक विख्यात विदेशी सम्वाददाता 'न्यूयार्कर' पत्र मे लिखता है —

नाज़ी युद्ध से पूर्व एमस्टरडम में एक लाख यहूदी रहते थे। अब वहां पांच हज़ार ही यहूदी हैं। यहां यहूदियों को पकड़ना आसान था। गेस्टापो (जर्मन खुफिया पुलिस) को केवल नहरों पर बने ऐसे पुलों को काटना भर था, जो कि यहूदी बस्तियों के, जिन्हें वे घेट्टो के नाम से पुकारते थे, पास में थे। इसके बाद उन्होंने १८ वीं सदी में बने मकानों में उनके निवासियों को धकेलना शुरू किया। जिन लोगों ने क्षण-भर में ही जातीय कत्लगाह बने इन द्वीपों से बचकर निकलने की चेष्टा की, उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। शेष बचे निस्सहाय लोगों को पकड़कर बैलगाड़ियों द्वारा जर्मन नजरबन्द-कैम्पों में भेज दिया गया। हालैण्ड के एक लाख चालीस हज़ार यहूदियों में से एक लाख चौदह हज़ार जर्मन शासन के अन्तर्गत नष्ट हो गए।

इतने व्यापक पैमाने पर की गई निर्दयता के पीड़ित व्यक्ति कैसे इसका विरोध कर सकते थे? तानाशाही द्वारा तत्काल पीड़ित, अभागे लोगों को ही, न केवल इसके विरुद्ध सक्रिय विरोध प्रकट करना आवश्यक है, अपितु समस्त मानवता को ऐसा करना जरूरी है क्योंकि हम सब ही तानाशाही द्वारा पीड़ित हैं। जिस समय इसके हाथ हमें नहीं भी छू रहे हों, तब भी इसकी भावना हम पर प्रभाव डाल रही होती है।

तानाशाही के अन्दर, प्रजातन्त्र के बारे में गान्धी के विचार और स्वयं गान्धी भी, जीवित नहीं रह सकते। एक तानाशाह गान्धी को विस्मृति की गोद में सुला देने की सीधी आज्ञा दे देगा। उनके बारे में फिर कभी कोई सुन न सकेगा। मान लीजिए कि गान्धी के मार्ग पर चलने के कारण पांच लाख व्यक्ति तानाशाही को चुनौती देते हैं। उनकी भी समाप्ति कर दी जाती है। मान लीजिए कि तीस लाख व्यक्ति ऐसी चुनौती देते हैं तो उनका भी खात्मा कर दिया जाता है। मान लीजिए कि दो करोड़ भारतीय तानाशाही को चुनौती देते हैं। किसी भी देश में यदि दो करोड़ धर्म-युद्ध-रत गान्धीवादी हों, तो सर्वप्रथम वहां तानाशाही की किसी

भी अवस्था मे स्थापना हो ही नही सकती। ऐसे राष्ट्र, जो कि गान्धी-वाद के आधारभूत सिद्धान्तो के प्रति सच्चे हो, एकतन्त्रवाद के अत्याचार से बचे रहते हैं। गान्धीवाद की हिटलरवाद या स्टालिनवाद से मैत्री नही हो सकती।

डुस्सेलडोर्फ में रविवार की सुबह

हमारे युग का एक आवश्यक प्रश्न यह है कि क्या वे लोग, जो कि एक बार एकतन्त्रवादी शासन के जाल में फंस चुके हैं, इससे छुटकारा मिलने पर इसका विरोध करेंगे या फिर इसके फंदे में पड़ जायंगे? क्या जर्मनों, इटालियनों और जापानियों का तानाशाहों की ओर झुकाव न होने के विषय में सदैव के लिए "इलाज" हो चुका? या जिन भावनाओं, विश्वासों और परिस्थितियों के कारण एक तानाशाही के सामने उन्होंने सिर झुकाना पसन्द किया, वे ही भावनाएं, विश्वास और परिस्थितियां उन्हें आसानी से दूसरी तानाशाही का भी शिकार बना देंगी?

जर्मनी के ब्रिटिश क्षेत्र के एक नगर, डुस्सेलडोर्फ के एक भग्नावशिष्ट मकान के ऊपर सूर्य "गड़गड़ाहट के समान" ऊपर उठ रहा था। पार्क होटल में अपने कमरे की खिड़की से झांककर मैंने बाहर देखा। क्षितिज पर विद्यमान अधिकांश इमारतें, बमों की चोटों से मिट्टी के ढेरों या विषम आधी और चौथाई दीवारों के रूप में, जिनमें बिना चौखट के खिड़कियों के छिद्र थे, परिवर्तित हो चुकी थीं।

नीचे मेरी मोटर मेरी प्रतीक्षा में खड़ी थी। मोटर चलाने वाला स्टेटिन-निवासी एक परिश्रमी और चुप जर्मन था। मैं उससे जब प्रश्न करता, तब उसका उत्तर दे देने के अतिरिक्त वह सदा ही चुप रहता था। अपना पेट भरने के लिए उसके पास भूरी, पानी में भीगी हुई, रोटी के कुछ मोटे-मोटे टुकड़े थे। हिटलर की फौजों में रहकर वह पोलैंड, फ्रांस, रूस क्रीमिया और काकेशस, यूनान तथा जर्मनी के परिश्रमी

मोर्चे पर लड़ा था। उसने बताया कि रूस की अवस्था बिलकुल प्रारम्भिक काल की-सी है। इसे यूरोप की-सी अवस्था में लाने मे पचास वर्ष लगेंगे। वह इचों को सबसे अधिक पसन्द करता था। वे स्वच्छ लोग है। जब रूसी स्टेटिन में प्रविष्ट हुए, उन्होंने उसकी अठारह वर्षीय भगिनी से बलात्कार करने की चेष्टा की। उसने आत्म-हत्या कर ली। इसके अनतर उसकी माता ने भी ऐसा ही किया। उसने यह सब बातें मुझसे रुखाई-भरी सचाई से कीं, ठीक वैसे ही स्वर में, जैसे कि एक यहूदी स्त्री ने लन्दन में मुझसे कहा था—"मेरे माता-पिता ? हा ! उन्हें औसविज शहर की एक भट्टी में झोंक दिया गया।" यूरोप ने इतने संकट देखे हैं कि भावुकता के लिए कोई गुञ्जाइश नहीं रह गई, लोगों की आखों में आसू शेष नहीं बचे। भावुक बनकर आप एक भग्नावशिष्ट शहर में नहीं रह सकते।

मैं केन्द्रीय रेलवे स्टेशन की ओर रवाना हो गया। मुख्य वेटिंग-रूम की बम पड़ने से गिरी हुई स्थायी छत के स्थान पर एक लकड़ी की छत बनाई जा चुकी थी। वेटिंग-रूम के बायें सिर पर एक बीयर की दूकान थी। इसमें घुसने का जब मैंने यत्न किया, तब लम्बा कोट पहने और सिर पर गरम कपड़े का टोप लगाए एक व्यक्ति ने मुझे रोक लिया। मुझे एक टिकट खरीदना पड़ा। कम्युनिस्ट दल द्वारा चुनाव-आंदोलन के लिए बुलाई गई एक सभा हो रही थी। टिकट का दाम एक मार्क था। मेरे पास केवल पचास मार्क का एक नोट ही था। उसके पास रेज़गारी नहीं थी। टिकट के दाम के बदले मैंने चैस्टरफील्ड की एक सिगरेट उसे पेश की। "बहुत सुन्दर। इससे मैं पाच मार्क का मुनाफा उठाऊंगा"—उसने कहा। चोर बाजार में एक अमरीकन सिगरेट की छै से नौ मार्क तक कीमत मिलती है।

बीयर की दूकान लगभग साठ गज लम्बी और बीस गज चौड़ी थी। यह आधी पटरी से समतल और आधी उससे नीची थी। चार बिजली की कुप्पियां धुंधलेपन पर कुछ प्रकाश की किरणें बिखेर रही

थीं। श्रोताओं में दो सौ के लगभग पुरुष और कुछ स्त्रियां थीं, जो कि सब गोल-मेजों के चारों ओर बैठे हुए थे। अधिकांश स्त्री-पुरुष अधेड़ आयु के थे। किसी की आयु चालीस वर्ष से कम नहीं प्रतीत होती थी। एक गंजा सफेद वालों वाला दुर्बल बेरा सफेद जाकेट पहने बीयर के गिलासों को एक बड़ी थाली में रखे उन्हें बांटता हुआ एक मेज से दूसरी मेज की ओर अपने पंजों के बल चल रहा था।

अच्छी पोशाक पहने जो वक्ता बोल रहा था वह एक डाक्टर था। उसने कहा—"समस्त जर्मन डाक्टरों में से पच्चीस प्रतिशत नात्सी-दल में सम्मिलित हो चुके हैं।" जिस विज्ञप्ति पर मैं नोट ले रहा था, उसे खोलकर मैंने देखा। इसमें घोषणा की गई थी कि आज प्रातः की सभा "डुस्सेलडोर्फ के सच्चरित्र' लोगों की होगी। द्वार पर मुझे एक पतले कागज पर छपा कम्युनिस्टों का चुनाव का पर्चा दिया गया था। इसका शीर्षक था—'दुर्बल नात्सी, अब क्या ? उसमें लिखा था—"जर्मनी की नात्सी पार्टी के एक करोड़ बीस लाख सदस्य थे। पुरुष, स्त्री और नवयुवकों में से लाखों को, या तो नैतिक दबाव से, या नौकरियां छूट जाने के भय से, नात्सी दल में प्रविष्ट होने के लिए विवश किया गया था। क्या इन समस्त एक करोड़ बीस लाख व्यक्तियों को अब फिर उसी कुएं में फेंक दिया जायगा ? पर्चे में "दुर्बल नात्सियों" से मांग की गई थी कि वे कम्युनिस्ट दल में सम्मिलित हो जायं।

डाक्टर ने अपना भाषण जारी रखा—"हम स्पष्टतया भविष्यवाणी कर सकते हैं कि यदि हमने मार्क्सवाद के उपदेशों का अनुसरण नहीं किया तब विनाश अनिवार्य है। यह बात कुछ महत्व रखती है कि अमरीकन राजनीतिज्ञ बायर्नीज ने अपने हाल ही के एक भाषण में कहा था कि १९१९ के बाद जर्मनी में जो विनाश हुआ उससे बचा जा सकता था, यदि जर्मन कार्ल लैवेकनेश के परामर्श को स्वीकार कर लेते।"

एक क्षण के बाद उसने फिर कहा—"कम्युनिस्ट नाशनापूर्ण एक

वैज्ञानिक पद्धति पर चलना चाहते हैं। यह पद्धति समाजवाद है। नात्सियों के पास भी एक योजना और सगठन था। उदाहरण के रूप में औषधियों और हवाई उडान के बारे में। फिर समाजवाद और नात्सी-वाद में क्या अन्तर हुआ? नात्सियों का लक्ष्य विनाश और समाप्ति था। इसके विपरीत रूसी समाजवाद इतिहास, औषधि और अन्य विज्ञानों में महत्वपूर्ण अनुसन्धान कर रहा है। मैंने हाल ही में परमाणु के सम्बन्ध में एक अमरीकन पुस्तक पढ़ी है। इसके लेखकों ने नागरिक कार्यों के लिए परमाणु-शक्ति के प्रयोग का विरोध किया है। अमरीका परमाणु-शक्ति का प्रयोग केवल फौजी कार्यों और कूटनीतिक दबाव के लिए करना चाहता है। सयुक्तराष्ट्र अमरीका में परमाणु-शक्ति का अर्थ है पीछे की ओर दौड, रोक और बधन। सोवियत प्रजातन्त्र की यूनियन में इसके अर्थ है वैज्ञानिक प्रगति और मानवता का हित।"

आपने जर्मन-नवयुवकों और शिक्षा के बारे में भी बहस की। आपने चेतावनी दी कि "जर्मन-चिकित्सकों का ससार प्रजातन्त्रवादी हो जाना आवश्यक है, अन्यथा फिर प्रतिक्रिया का वेग बढ जायगा। बुद्धि-जीवियों को मजदूरों के पक्ष में हो जाना चाहिए क्योंकि चिकित्सक तब तक समृद्ध नहीं हो सकेंगे, जब तक कि मजदूरवर्ग समृद्ध नहीं होता। अनेक जर्मन बुद्धि-जीवी नेता, उदाहरण के रूप में स्कार्न होर्स्ट, क्लौजेविज़, फ़िशे इत्यादि धनिक वर्ग जुन्करों के विरोधी थे। १८४८ में बहुत-से बुद्धिवादियों ने क्रांति का समर्थन किया था। अमरीकन गृह-युद्ध में आठ लाख से भी अधिक १८४८ के विद्रोह के समर्थक जर्मन, प्रगति-शील दल की ओर से लडे थे। इनमें सैतीस जनरल भी थे।

"समाजवाद शांति चाहता है। समाजवाद के अन्तर्गत स्त्रियों को डाक्टरी के स्कूलों में प्रविष्ट होने के सबंध में आज जो कठिनाई उप-स्थित हो रही है, ऐसी कोई कठिनाई नहीं होगी।

"मुझे अब अपना भाषण समाप्त करना चाहिए। या तो हम प्रगति की ओर अग्रसर होंगे या परमाणु-बमों द्वारा विनष्ट हो जायगे।'

भाषण-कर्ता जब द्वार की ओर तेजी से अग्रसर हुआ तब तालियों की गड़गड़ाहट द्वारा उसका स्वागत किया गया। मैं उसके पीछे गया और स्टेशन के वेटिंगरूम में मैंने उसे पकड़ लिया। मैंने उसका नाम पूछा। उत्तर मिला—"डा० कार्लहगेडोर्न।"

मैंने कहा कि मैं एक अमरीकन पत्रकार हूँ और जर्मनी पर नाजीवाद के प्रभाव को देखने के लिए जर्मनी आया हूँ। यह भी कहा—"आपने अमरीकन राज्य-मन्त्री बायर्नीज का अपने भाषण में उल्लेख किया था कि उन्होंने घोषणा की कि यदि जर्मनी लेबेरकनेज का अनुसरण करता, तब उसका विनाश से बच निकलना सम्भव था। किन्तु मुझे आश्चर्य होगा यदि बायर्नीज ने कभी कार्ल लेबेरकनेज का नाम भी सुना हो। मान लें कि उन्होंने नाम भी सुना है, तब भी निश्चय ही वे जर्मनों को कम्युनिस्ट नेता का अनुसरण करने का परामर्श देने की बात तक नहीं सोच सकते। बायर्नीज एक अनुदार विचारों के व्यक्ति हैं।"

"हां!" आह खींचते हुए डाक्टर ने कहा—"तब यह कैसे उद्धरित हो सकता है? मैंने पत्रों से यह बात पढ़ी थी।"

मैंने स्मरण दिलाया—"हाल ही में जर्मनी के बारे में बायर्नीज ने एक भाषण स्टटगार्ट में दिया था। आप उस भाषण से अपना उद्धरण ढूंढ सकते हैं। मुझे ऐसे किसी वक्तव्य का स्मरण नहीं। दूसरी बात यह है कि आपने अपने भाषण में स्वीकार किया था कि अमरीका परमाणु-शक्ति का प्रयोग औद्योगिक कार्यों के लिए नहीं करेगा। इसके विपरीत रूस इन कार्यों के लिए इसको उपयोग में लायगा। आप संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बारे में भूल में हैं। उद्योगों में परमाणु शक्ति का उपयोग करने का यत्न अमरीकनों द्वारा न करना बिल्कुल अमरीकनों के स्वभाव के विपरीत बात होगी। सचाई यह है कि इस दिशा में कार्य भी प्रारम्भ हो चुका है। और जहां तक रूस का प्रश्न है, उसके बारे में आपको कैसे जानकारी हुई? यह तो एक गहरी सावियत भेद की बात है। रूस में परमाणु-सम्बन्धी जो हलचल हो रही है उसके बारे में आप कुछ नहीं

जानते। न कोई अन्य बाहरी व्यक्ति इस बारे मे कुछ जानता है।"

वह मेरे सन्मुख चुप खड़ा रहा।

मैंने कहा—"जर्मनी बारह वर्षों तक गोयबल्स के झूठे प्रचार का शिकार बन चुका है। प्रत्येक व्यक्ति स्वीकार करेगा कि जर्मनी को झूठ काफी सुनाया जा चुका। किन्तु आप वही कर रहे है, जो कि गोयबल्स ने किया था।

उसने कहा कुछ नहीं और वह बेचैन प्रतीत हुआ। मै वापिस मुड़ा और सभा-स्थल की ओर चला गया।

बाद मे मै गली में घूमने निकला। गिरी हुई दीवारों पर राजनीतिक पोस्टरों की तह लगी हुई थी। कई जर्मन दलों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये थे। एक ईसाई प्रजातन्त्री यूनियन (सी डी यू) के पोस्टर पर लिखा था—'ईसाई सी डी यू के पक्ष में है।' सी डी यू के हर पोस्टर के दाहिनी ओर सामाजिकप्रजातन्त्री दल ने एक प्रतिस्पर्धी पोस्टर लगा रखा था—"सच्चा ईसाई समाजवादी है। एस० पी० डी० को मत दे।"

समाजवादियों ने जर्मन-स्त्रियोंसे प्रार्थना की हुई थी कि वे नवयुवकों के चरित्र को ऊंचा उठाने में सहायता करें। सी डी यू० द्वारा पुकार की गई थी—' और अधिक युद्धों की आवश्यकता नहीं।" केवल कम्युनिस्टों द्वारा प्रतिज्ञाएं की गई थी—"क्या तुम अधिक कोयला चाहते हो? कम्युनिस्ट को वोट दो।' किन्तु कोयले का उत्पादन और बंटवारा पूर्णतया विदेशी अधिकृत-शक्तियों के हाथ मे है। कोई भी जर्मन दल, चाहे वह समाजवादी हो या कम्युनिस्ट या कोई अन्य, जर्मन-मतदाताओं को अधिक कोयला नहीं दे सकता। "क्या आप कीमतें कम कराना चाहते है? कम्युनिस्ट को वोट दे।" किन्तु कीमतें और वेतन अधिकृत-सेनाओं द्वारा, जब कि वे जर्मनी मे प्रविष्ट हुई थीं तब, युद्धकालीन नात्सी धरातल के आधार पर निश्चित किये गए थे। जर्मन कीमतों को घटा-बढा नहीं सकते।

जो लोग कष्ट में हैं उनके विश्वास में सेंधी मारने वाले डाक्टर और ऐसे ही सेंधीखोर राजनीतिज्ञ लाभ उठा रहे हैं। बीच में आने वाले लोग न तो देख सकते हैं और न सुन सकते हैं। वे तो केवल हड़प कर जाने की ही शक्ति रखते हैं। संकट, अनिश्चितता और झगड़ों के दिनों में ज्योतिषियों, भविष्य-वक्ताओं, मसीहाओं नकली "ईसाओं," रहस्यवादियों, नीम-हकीमों और इनके साथ ही फासिस्टों और कम्यु-निस्टों की भी बन आती है। ये सब खूब फलते-फूलते हैं।

एक तानाशाह का सबसे भीषण हथियार आतंक है। आतंक भय को पैदा कर देता है, जिससे कि सुरक्षा की भावना और चरित्र के रूप में इसका मूल्य चुकाने की तत्परता तीव्र रूप धारण कर लेती है। ताना-शाही के देवता मनुष्य-बलि की मांग करते हैं। इसमें सबसे महान बलि चरित्र की है। भय मनुष्यों को ढोंगियों में परिवर्तित कर देता है, जो कि जीवित रहने और सफलता प्राप्त करने के लिए झूठ बोलते हैं, सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं और ठगते हैं। आतंक स्वर-में-स्वर मिलाने वालों, चापलूसों, पागलों और जूते चाटने वालों की सृष्टि कर देता है।

तानाशाही अपना निर्माण सर्वशक्तिमान एक ही पत्थर के बने हुए दैत्य के डरावने रूप में करती है, जिसे न तो कोई व्यक्ति बदल सकता है और न दुर्बल बना सकता है। इसलिए इस बात का यत्न भी क्यों किया जाय! सर्वत्र विद्यमान भेदियों और भीषण भय को देखते हुए किसी प्रकार का षड्यन्त्र रचना भी एक मूर्खता है। इसलिए सन्तुष्टि, निष्क्रियता और जो होता है होने दो की दार्शनिकता अपना कार्य करती हैं। वही बहादुर, जो कि युद्ध में अपने देश के लिए मरने के लिए तैयार है, एक कायर नागरिक बन जाता है। वह सफलता का कोई अवसर नहीं पाता। इस बात का उसे निश्चय होता है कि यदि उसने स्वेच्छाचारिता के किले पर आक्रमण किया, तब स्वयं वह, उसका परि-वार और उसके मित्र, बिना किसी प्रकार की सफलता प्राप्त किये मृत्यु

के मुख से चले जायगे । दमन की तीव्रता के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आयगा ।

तानाशाही इच्छा-शक्ति को दुर्बल बना देती है । विचार करने की शक्ति को यह निरुत्साहित करती है । विचार खतरनाक वस्तु है। राजनैतिक पहल को भी यह निरुत्साहित करती है । तानाशाह की बुद्धि से ही समस्त बुद्धिमत्ता और अधिकार प्रवाहित होते हैं । ऐसी अवस्था मे व्यक्ति बचाव का ढग अपना लेता है और भीड मे अपने-आपको खो देने की चेष्टा करता है । अत्यधिक महत्त्वाकाक्षा मृत्यु का परवाना होती है । एक लोकप्रिय जनरल सकट का आह्वान करता है । जिस व्यक्ति का उससे मतभेद हो, वह भी संकट का आह्वान करता है । जी-हजूरी, स्वीकृति आत्मा के विनाश और आज्ञापालकता के लिए पुरस्कार मिलते है । ये सुरक्षा की सबसे अच्छी गारण्टी होते है ।

नवयुवक शीघ्र ही इस पाठ को सीख लेते है । स्कूल और निरन्तर स्फूर्त होने वाला प्रचार इन समस्त बातो को राष्ट्र का विकास क्रान्ति की विजय और आने वाली पीढी के सुख का नाम देकर राज्य की आवश्यक और यशस्वी सेवा बतलाता है । देश मे कठोरता और अत्यधिक श्रम होने पर भी उसकी प्रशसा की जाती है और उसकी तुलना अन्य प्रजातन्त्रो से करके उन्हे विनाश की ओर अग्रसर और समाप्तप्राय बतलाते हुए इसका सुन्दर चित्र खींचा जाता है । प्रजातन्त्रो तक पहुच अत्यन्त सीमित कर दी जाती है, ताकि इन सरकारी झूठो की पोल न खुल जाय ।

जब बाहरी दबाव के कारण जर्मनी, इटली और जापान मे तानाशाही को नीचा दिखा दिया गया तब भूमि जीर्ण-शीर्ण व्यक्तियो के मलबे से भर गई । मुरझाये हुए चरित्र के मानवीय दानो के भग्नावशेषो मे खोज की गई । नये स्वामियो का किसी ने विरोध नहीं किया। विरोध करने की शक्ति तानाशाह पहले ही समाप्त कर चुके थे । केवल कुछ कट्टरपन्थी यहा-वहा कटे-फटे स्थानो मे शेष रह गए ।

सम्भवत ये देश सदैव से आज्ञा-पालक और नियन्त्रित थे और इसीलिए ये तानाशाह के जाल में फंस गए, जिसने उन्हें और भी ऐसा ही बना दिया। तानाशाही के ज्यों ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, एकतन्त्र-वाद के फंदे में फंसी हुई भेड़ों को, या कम-से-कम उनमें से कुछ को, एक नये एकतन्त्रवाद के अहाते में स्वेच्छा से हांककर आसानी से ले जाया जा सकता है। जर्मनी, इटली, हंगरी और बहुत-से अन्य यूरो-पीय देशों के असंख्य फासिस्ट आज कम्युनिस्ट दल में शामिल हो चुके हैं।

एकतन्त्रवाद के फंदे से छूटने का सर्वप्रथम उपाय यह है कि चरित्र और मानवीय मर्यादा की भावना को पुन पैदा किया जाय। यह कार्य साधनों के सम्बन्ध में शंकाशील बने रहने, मनुष्य का और अधिक सम्मान करने तथा सरकारी कार्यो और कानूनों में व्यक्तिगत या लोक-प्रिय पहल द्वारा किये कार्यों में अन्तर करने-जैसे गान्धीवादी विचारों के लागू होने से होना सम्भव है। नात्सियों और दूसरे फासिस्टों को निकाल फेंकने का नकारात्मक ढंग प्राय आवश्यक होता है। किन्तु इससे जनता किसी दूसरे एकतन्त्रवादी ढोल पीटने वाले के जाल में फंस सकती है। कुछ लोग फंस भी चुके हैं। कुछ भी क्यों न हो, जनतन्त्रीकरण उन लोगों पर ही प्रभाव डाल सकता है, जो कि बिलकुल या नहीं चुके और अब भी पहचाने जा सकते हैं। जो थोड़ा-बहुत रंग उनके रक्त और आत्मा में प्रविष्ट हो चुका है, उसका क्या किया जाय? इस कार्य के लिए विष काटने वाली गान्धीवादी औषधि की आवश्यकता होती है। ठीक-ठीक उपचार यह हो सकता है कि "गान्धी से इनका जनतन्त्रीकरण कराया जाय।"

व्यक्तित्व की धज्जियां निरचों के द्वारा जोड़कर नहीं मिल सकतीं और न प्रजातन्त्र की पुनस्थापना बाइबिल के अनुसार "आंख के बदले आंख" का इन्जेक्शन लगा कर ही की जा सकती है। अन्ततोगत्वा इसका परिणाम यह होगा कि सब लोग अन्धे हो जायंगे।

प्रजातन्त्र की स्थापना या एकतन्त्रवाद पर रोक लगाने के प्रत्येक प्रयत्न को व्यक्तित्व के पुनर्संस्थापन पर निरन्तर बल देना आवश्यक है। स्वतंत्रता और जिम्मेवारी इस कार्य में सहायक होती है। कठोर शासन रुकावट पैदा करता है।

अत्यधिक शारीरिक कष्ट भी साधनों के सम्बन्ध में प्रजातंत्रीय सम्मान को कम करने वाले होते हैं। जर्मनी में स्थित अमरीकन फौजी गवर्नर जनरल लुसियअस डी० क्ले का कथन है कि मेरे विचार में जर्मन कम्युनिस्ट नहीं होंगे। किन्तु मैं अपने इस कथन पर दृढ़ नहीं रहूंगा यदि दैनिक राशन १५५०से गिरकर १२४० कैलोरियां रह जाय। यूरोप में एक प्रजातन्त्रवादी और एक कम्युनिस्ट में अन्तर आधी रोटी प्रतिदिन या छप्पन सेर कोयला प्रतिसाल का ही हो सकता है।

आध्यात्मिक पुनर्जागरण में जिसके अभाव में प्रजातन्त्र विनष्ट हो जायगा—भूख, डंडे, जंजीरें या एक अधिकार-इच्छी राज्य सुविधाएं नहीं पहुंचा सकते।

तानाशाही लोगों को परेशान करती है। फिर भी करोड़ों लोग इसके अभ्यस्त हो जाते हैं। समय बीतने के साथ करोड़ों व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि स्वतन्त्रता क्या वस्तु है। रूस में नई पीढ़ी ने कभी स्वतन्त्रता का रसास्वादन नहीं किया और इसीलिए इससे स्वतन्त्रता के बारे में सम्मति लेना व्यर्थ है।

भूतपूर्व तानाशाही के देशों में फासिस्टवाद में जो ध्वंसावशेष हैं, वे नये फासिस्टवाद या कम्युनिज्म की भरती के लिए शक्तिशाली स्थल हैं। दूसरी ओर एकतन्त्रवाद मजबूरी के प्रति घृणा तथा स्वतंत्रता व ढिलाई के लिए एक प्यास पैदा किये बिना नहीं रह सकता। अकेले छोड़ दिये जाने की लोगों में इच्छा पैदा हो जाती है। इसीलिए तानाशाही की समाप्ति प्रजातंत्र के लिए एक उत्साहप्रद अवसर उपस्थित करती है। अपराधियों को दण्ड देना और फिर फिसल जाने वालों पर

आस रखनी आवश्यक है। किन्तु इससे भी कहीं अधिक आवश्यक यह बात है कि प्रत्येक ऐसे सम्भव उचित उपाय को कार्य में लाया जाय, जिससे कि भूतपूर्व गुलामों को यह बताया जा सके कि वे स्वतंत्र आदमी किस तरह बन सकते हैं।

जनरल लुसिअस डी० क्ले का विश्वास है कि जर्मनी का असैनिक शासन नागरिक शासन होना चाहिए। फौजी-शासन स्वभावतः बाहरी शक्ति की बातों पर सदैव बल देगा। लोगों में इसके प्रति वही प्रतिक्रिया होगी, जो कि तानाशाही के प्रति थी। इस प्रकार का दिमाग प्रजातंत्र की ओर आगे बढ़ाकर नहीं ले जा सकेगा।

प्रजातंत्र की स्थापना केवल प्रजातंत्रीय ढंग और प्रजातंत्रवादी लोगों द्वारा ही हो सकती है। मैं भूतपूर्व शत्रुओं और सरकार प्रजातंत्र-विरोधी देशों का इलाज उन्हें अपराधी के स्थान में बीमार समझकर करने की चेष्टा करूंगा। अपराधी बहुत से हैं। वे इसीलिए अपराधी हैं क्योंकि वे बीमार हैं। हमारे इस संसार में घृणा और शक्ति को बहुत उपयोग में लाया जा चुका है। हमें अब दया से काम निकालने की चेष्टा करनी चाहिए। हम प्रजातंत्र को कार्य में लाने का यत्न कर सकते हैं।

जर्मनी के बृटिश मन्त्री लार्ड पेकेनहम ने २० जून १९४७ को भेंट में कहा था—"जर्मनी के प्रति जो-जो शुभ कामनाएं मैंने जब-जब प्रकट की, उनका सदैव उन्होंने वैसा ही उत्तर दिया।" ऐसा व्यवहार अच्छे उपदेशात्मक सिद्धान्त और ईसा और गान्धी के विचारों पर आधारित है।

हमारी दुनिया को, जो कि एकतंत्रवाद के फंदे में फंस जाने की हमें धमकी दे रही है, स्वतंत्रता के साहस-भरे प्रयोग की अपेक्षा ऐसे एक प्रयत्न से कहीं अधिक खतरा है जो कि भूतपूर्व शत्रु देशों उपनिवेशों और अन्य प्रजातंत्रीय देशों को सदैव के लिए गुलाम बनाने के लिए

किया जा रहा हो इस नये प्रयोग को सफल बनाने के लिए जो लोग इसका कार्य-संचालन करें उनके लिए यह आवश्यक है कि वे स्वयं स्वतन्त्र व्यक्ति हो। ऐसे लोग ऊंची मान-मर्यादा और उच्च चरित्र वाले होने चाहिएं।

सातवां अध्याय

हिटलर और स्टालिन

अपने नेतृत्व को बनाए रखने के लिए मुसोलिनी अपने शासन को 'श्रमिक-वर्ग (प्रोलितेरियत)शासन' के नाम से पुकारता था। सोवियत ढंग को सरकारी तौर पर "श्रमिक-वर्ग की तानाशाही" कहा जाता है। रूसी प्रवक्ता इसे अदल-बदल कर कभी 'बोल्शेविक" कभी "कम्युनिस्ट' और कभी "सोशलिस्ट' शासन कहते हैं। हिटलर की तानाशाही "राष्ट्रीय समाजवादी' या जर्मन संक्षेप के अनुसार नात्सी थी। किन्तु स्टालिन कई सार्वजनिक भाषणों में कह चुके हैं कि "हिटलरवादी" (इस नाम से वे नात्सियों को पुकारना पसन्द करते हैं) राष्ट्रीय नहीं थे वे साम्राज्यवादी थे। साथ ही वे समाजवादी भी नहीं थे, अपितु प्रतिक्रियावादी थे। इसीलिए युद्ध-काल में लन्दन-स्थित रूसी दूतावास ने बी० बी० सी० (ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कम्पनी) को इन्हें "नात्सी" कहकर पुकारने से रोकने की चेष्टा की और १९४७ से रूसी कूटनीतिज्ञों ने इन्हें "राष्ट्रीय-समाजवादी' कहने पर आपत्ति की क्योंकि स्टालिन यह घोषणा कर चुके थे कि सोवियत संस्कृति "रूप में राष्ट्रीय और अन्दर से समाजवादी भावनाओं से परिपूर्ण' है। स्टालिन ने इस बात का भी दावा किया है कि उन्होंने "एक-देशीय समाजवाद' या राष्ट्रीय-समाजवाद की स्थापना कर दी है।

इस सादृश्य की नाम के साथ ही समाप्ति नहीं हो जाती। तानाशाहियां निर्दयतापूर्ण उपायों व्यक्तियों पर अत्याचार और जीवन के प्रति उपेक्षा की दृष्टि से भी एक दूसरे से मिलती-जुलती हैं। अधिकार

प्राप्त करने से पूर्व हिटलर ने इस बात का वचन दिया था कि "सिर लुढकेंगे।" और बहुत-से सिर लुढके भी। क्रेमलिन ने समस्त रूस मे रक्त की धाराए बहा दी। अन्य देशो के कम्युनिस्ट प्राय एकान्त मे बडे आनन्द से इस बारे मे बातचीत करते है कि अधिकार प्राप्त करने के बाद वे किस-किस को गोली से उडायगे। ये बातचीत, उनमे जो कुछ स्वाभाविक नही, उस चीज की सन्तुष्टि के लिए आवश्यक है।

बोल्शेविको मे जबकि ट्राट्स्की का स्थान दूसरे नम्बर पर था तब उन्होने एक पुस्तक लिखी थी, जिसमे आतक के औचित्य को सिद्ध किया गया था। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को स्टालिन ने अपना लिया है। उस अल्पमत के लिए, जो बहुमत को अपनी बात का विश्वास नही करा सकता, हिंसा ही मार्ग है। उन लोगो के लिए, जिनका विचारो मे विश्वास नही, जिनमे नैतिकता नही और जिनमे मनुष्य के लिए प्रेम नही—भले ही वे मानवता की भलाई का उपदेश दे—कुल्हाडे, रिवा-ल्वरे और अरण्डी का तेल ही धर्म है।

किसी लक्ष्य तक पहुचने के लिए साधन के रूप मे हिंसा का प्रारम्भ होता है। बाद मे यह प्रारम्भिक लक्ष्य को ही हडप जाती है और एक कला बन जाती है, जिसके द्वारा शक्ति पाशविक ढग पर स्थित रखी जा सकती है।

बोल्शेविक क्रान्ति के प्रारम्भिक दिनो मे खुफिया पुलिस शासन के शत्रुओ के विरुद्ध एक हथियार के रूप मे थी। जब पूजीपतियो, जमीदारो और क्रान्ति-विरोधियो की समाप्ति कर दी गई, खुफिया पुलिस उन लोगो के विरुद्ध लगा दी गई जिन्होने क्रान्ति की थी और जो कि अब भी इसके प्रति वफादार थे। इन लोगो का अपराध वफादारी ही था।

प्रारम्भ मे बोल्शेविज्म मे फासिज्म से बडा अन्तर था। पुराने, शुरू के बोल्शेविक, बुद्धिवादी, मजदूर या पेशेवर क्रान्तिकारी थे, जैसे लेनिन ट्राट्स्की और स्टालिन। इनकी दिलचस्पी की सर्वप्रथम वस्तु मजदूर-

वर्ग का हित होता था। नात्सी अधिकांशतः मध्यवर्ग के मानसिक और राजनैतिक दृष्टि से पद-च्युत लोग थे, जिन्होंने मजदूरवर्ग के विरुद्ध औद्योगिकों और जर्मन धनिक वर्ग जुन्करों के साथ सहयोग किया।

बोल्शेविकों ने फ्रेंच क्रान्ति के फलने और पश्चिमी-यूरोप के उदार दार्शनिकों का छककर रसास्वादन किया था। जार की स्वेच्छाचारिता इन्हें घृणित प्रतीत होती थी। ऐसी ही घृणा उन्हें गिरजों से थी, जो कि स्वेच्छाचारी सम्राट की सेवा करते थे। इसलिए प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता लेनिन और ट्राट्स्की के लिए कोई अज्ञात आदर्श नहीं थे। उन्होंने वचन दिया था कि अन्त में राज्य की धीरे-धीरे समाप्ति हो जायगी और तब लोग स्वतन्त्र हो जायगे। ऐसे सुन्दर स्वप्न की किसी फासिस्ट ने कभी कल्पना नहीं की थी। हिटलर की भविष्यवाणी थी कि फासिस्ट तानाशाही स्थायी होगी अर्थात "एक हजार वर्ष' तक जारी रहेगी।

इसके अतिरिक्त बोल्शेविक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे। अन्तर्राष्ट्रीयता का समर्थन और राष्ट्रीयता, साम्राज्यवाद और जातीयता का विरोध, लेनिन के कम्युनिज्म के ताने-बाने थे। क्योंकि कम्युनिज्म "संसार-भर के मजदूरों का संगठन" चाहता था, ऐसी अवस्था में रंग, जन्म-स्थान, रक्त या माता-पिता के धर्म के कारण वह किसी के विरुद्ध भेद-भाव या किसी का पक्ष कैसे ले सकता था? व्यक्तियों की जांच वह उनके आर्थिक कार्यों और उनके सामाजिक उद्गम स्थान से करता था।

इसके विपरीत नात्सी जातीय और राष्ट्रीय श्रेष्ठता के सिद्धान्त पर बल देते थे—"जर्मनी (डच सलेण्ड) सबसे अधिक श्रेष्ठ है", "आर्यन नेता" 'एक ही राष्ट्र, एक ही जाति के लोग और एक ही उनका नेता, समस्त जर्मनों का एक ही राष्ट्रीय तानाशाही के अन्तर्गत लाना आवश्यक है। इन बातों में ही दूसरे विश्व-व्यापी युद्ध के बीज छिपे हुए थे।

मुसोलिनी ने अपने कार्य का प्रारम्भ एक समाजवादी, उग्रपन्थी समाजवादी के रूप में किया था। इसके बाद उसने राष्ट्रीयता को

स्वीकार कर लिया और तानाशाही की स्थापना की। इन बातों ने उसे फासिस्ट बना दिया।

समस्त पूंजी पर राज्य का अधिकार, इसके साथ ही खुफिया पुलिस की तानाशाही तथा साथ ही राष्ट्रीयता भी, ये सब मिलकर राष्ट्रीय-समाजवादी ही हुआ। भले ही इसके नेता मजदूर-वर्ग (प्रोलितेरियत) के नाम का शोर मचाया करें। समाजवाद की बहुत-सी किस्में हैं। स्वयं कार्ल-मार्क्स ने यहूदी-विरोधिता को "मूर्खों का समाजवाद" कहा है। राष्ट्रीय-समाजवाद अपराधियों का समाजवाद है।

आज रूस में पुराने शब्द बोल्शेविज्म, कम्युनिज्म और सोशलिज्म चालू हैं। किन्तु प्रजातन्त्री लक्ष्यों का त्याग कर देने, तानाशाही की कठोरताएं बढ जाने और राष्ट्रीयता को चालू कर देने से, स्टालिन विश्वासों और विचारों में हिटलर और मुसोलिनी के भाई-बन्धु बन गए हैं।

रूस ने अपने पथ का त्याग १९३४ और १९३५ से किया प्रतीत होता है। स्टालिन जानते थे कि सोवियत् अर्थ-नीति समृद्धि के बारे में दिये गए अपने वचन को पूरा नहीं कर सकी और अभी कुछ समय तक पूरा कर भी नहीं सकती। उत्साह व विश्वास को पुष्ट करने के लिए किसी-न-किसी चीज की वृद्धि होनी चाहिए। वे राज्य की पूंजीवादी नीति को प्रजातन्त्री शक्ल दे सकते थे और इस प्रकार वास्तविक समाजवाद की स्थापना कर सकते थे, या वे राष्ट्रीयता की वृद्धि कर सकते थे। अपने विशिष्ट ढंग के अनुसार उन्होंने दोनों ही दिशाओं में प्रयोग किये। एक नया विधान बना कर उन्होंने प्रजातन्त्र को कागजी रूप दे दिया। इसके साथ ही उन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को भी चालू कर दिया।

किन्तु एक तानाशाही के लिए पद-च्युत होना कठिन कार्य है। स्टालिन भी उस समय, जब कि भौतिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में असन्तोष पैदा हो सकता था, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर लगे हुए बन्धनों में ढील छोडने का साहस नहीं कर सके। इसके विपरीत उन्हें बन्धनों को और

भी दृढ करना पड़ा और शासन की असफलता के लिए उच्च पदधारी बलिदान के बकरों की खोज करनी पड़ी । मास्को के प्रसिद्ध पहले मुकदमे में ये लोग ही अभियुक्त थे । १९३४, १९३६ १९३७ और १९३८ के मुकदमों और शुद्धि ने नये विधान को रद्द कर दिया तथा कम्युनिस्ट दल, ट्रेड यूनियनों और देश में प्रजातन्त्र के जो अवशिष्ट चिह्न थे उनकी समाप्ति कर दी । आज रूस में एक ऐसा शासन है जिसका समस्त पूँजी पर स्वामित्व है और इसे वह अपनी इच्छा से कार्य में लगाती है । यह शासन पूर्ण स्वेच्छाचारिता से शासन करता है और राष्ट्रीयता की शिक्षा और उस पर अमल करता है । यह एक गलत सम्मिश्रण है ।

सोवियत यूनियन अनेकों राष्ट्रीयताओं का गुट है । कुल आबादी के ५८ प्रतिशत लोग वे लोग हैं जिन्हें महान रूसी कहा जाता है । चार करोड़ व्यक्ति यूक्रेन निवासी हैं। इनके अतिरिक्त आर्मीनियन, जार्जियन, कालमक, उजबक, तज्जाक, यहूदी, ब्यूरियट, ओस्सट, क्राटियन, श्वेत-रूसी, अजरबैजानी, जर्मन, मोल्डेवियन तातार, बदजारी सद-स्वान्स, सिरकासियन इत्यादि-इत्यादि बहुत-सी जातियाँ भी रूस में रहती हैं, जिनकी संख्या कुल मिलाकर एक सौ तीस से भी कहीं अधिक होगी।

ज़ार की सरकार नाज़ी आर्यों और मन जैसे बातों वाले सनातन रूसियों की सरकार थी, जो कि रूसी लोगों को छोड़ कर शेष सब लोगों से घृणा करते थे। यह सरकार उन लोगों को भाषा, वेश, रीति-रिवाज या धर्म की दृष्टि से रूसी बनाने की कोशिश करती थी । १९१७ तक रूस राष्ट्रीय अल्पमतों के लिए एक कैदखाना था । बोल्शेविक क्रान्ति ने इन्हें समान अधिकार रखने वाले राष्ट्रों के स्वतन्त्र संगठन में परिवर्तित करने का भार अपने सिर पर लिया । समस्त राष्ट्रीय अल्पमतों को सोवियतों ने अपनी भाषा में बोलने के लिए प्रोत्साहित किया । यदि उन भाषाओं का कोई व्याकरण या लिखने के लिए कोई लिपि न थी तब सरकार ने

इनके विकास के लिए वैज्ञानिक भेजे। अल्पमत जिन क्षेत्रों मे बसते थे, वहा अलग प्रजातन्त्र या उप-प्रजातन्त्र इन अधिकारियों के महयोग से स्थापित किये, जो कि स्वय इन अल्पमतों के सदस्य थे। इसका फल प्रान्तीय या प्रादेशिक स्वायत्त-शासन की स्थापना हुई।

क्रान्ति से पूर्व तथा इसके बाद भी कुछ कम्युनिस्टो ने इस पद्धति को अपनाने का विरोध किया। इसे उन्होंने राष्ट्रीयता बताया। उन्होंने कहा कि इससे जातीय भेद-भाव को बल प्राप्त होता है और इससे क्रांति की देन उस व्यक्ति के निर्माण में रुकावट पैदा हो जायगी, जो कि न तो रूसी हो और न आर्मीनियन, अपितु जो अन्तर्राष्ट्रीयता को हृदय में स्थान देने वाला, वर्ग भेद-भावना की चेतनता से युक्त और एक लगन-शील सोवियत् नागरिक हो।

किन्तु क्रेमलिन ने निश्चय किया कि रूसी को प्रथम स्थान देने की जार की नीति को हमे बदलना ही होगा। सोवियत् यूनियन का वह आधा हिस्सा, जो कि रूसी नहीं था, उसे क्रेमलिन को स्वामित्व और शासन प्रदान करना पड़ा। सोवियत् पदाधिकारियो में स्टालिन और ओजोनीक्ज़ि जैसे जार्जियन, मीकोयन और काराखान जैसे आर्मीनीयन तथा जीनोवीव, कामेनेव, लिटविनोफ और कागनोविच जैसे यहूदी चोटी के स्थानों पर पहुंच गए। यहा इनकी उपस्थिति इस बात का ठोस प्रमाण थी कि रूसियों के अतिरिक्त अन्य लोगों से भेद-भाव रखने की नीति की समाप्ति हो गई। यहूदियो को, जो कि पहले निर्दयतापूर्ण विनाशो तथा अन्य यहूदी विरोधी सजाओ के शिकार थे, सरक्षण प्राप्त हो गया। दूसरे जातीय दलो को भी ऐसे ही सरक्षण प्राप्त हो गए।

समस्त बोल्शेविको तथा अधिकाश सोवियत्-विरोधी विदेशी पर्यवेक्षकों का भी कथन था कि कम्युनिस्ट क्रान्ति ने राष्ट्रीय अल्पमतों की समस्याओ को हल कर लिया। जातीयभेद-भाव के विनाश को सोवियत् पद्धति की बडी सफलता मे से एक घोषित करते हुए इस पर प्रसन्नता प्रकट की गई।

जब कि दूसरे महायुद्ध का युग आया और प्रचार स्वयं आक्रमण के भाग हो गया तब अन्तर्जातीय मैत्री के इस सोवियत-भवन में बहुत-सी बड़ी-बड़ी दरारें दीख पड़ने लगीं। सीधे क्रेमलिन द्वारा प्रकाशित वक्तव्यों और आंकड़ों से पता चलता है कि युद्ध के दिनों में स्टालिन ने १९३६ के स्टालिन-विधान को भंग करते हुए स्टालिनग्राड और अष्ट्राखान के बीच वोल्गा पर स्थित स्वायत्त-शासन प्राप्त काल्मक प्रजातन्त्र, क्रीमिया में तातार प्रजातन्त्र और उत्तरी काकेशस में चेचेन और इंगुश प्रजातन्त्रों को कुचल दिया। ये सब लोग मुसलमान हैं। इनके प्रदेशों पर नात्सी सेना ने आक्रमण किया था। शिकायत यह है कि ये लोग सोवियतों के प्रति विश्वासघाती और हिटलर के सहायक बन गए थे। पता चला है कि इनमें से बहुत से पश्चिमी मोर्च पर जर्मनी की ओर से लड़े भी थे। इनमें से कुछ अमेरिकन सेना द्वारा पकड़े गए। बहुत से काल्मक और दूसरे भगोड़े अधिकृत जर्मनी के बृटिश और अमरीकन नजरबन्द कैम्पों में आज भी विद्यमान हैं। अन्त में इनके निकट पूर्व के अरब देशों में बसाए जाने की सम्भावना है।

सोवियत-रूस में अन्तर्जातीय फूट के प्रारम्भ होने का कुछ पता 'बोल्शेविक' पत्र से मिलता है। यह "सोवियत-यूनियन के कम्युनिस्ट दल का सैद्धान्तिक और राजनैतिक सरकारी पत्र" है। जुलाई १९४८ के अंक में जी० एलेक्जेन्ड्रोव का, जो कि दल के राजनैतिक शिक्षा-विभाग के मुखिया हैं, एक लेख है। एलेक्जेन्ड्रोव ने शिकायत की है—

हमारे इतिहासकार सोवियत-यूनियन के विभिन्न लोगों के घरेलू इतिहास की भली प्रकार छान-बीन नहीं करते। फलस्वरूप जातीयता द्वारा लड़े जाने वाले वर्ग-युद्ध की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता और कुछ जागीरदार और राजा नायक की पदवी प्राप्त कर लेते हैं। उदाहरण के रूप में कज़ान में "एर्डीगे" नामी काव्य को प्रकाशित करना सम्भव हो गया। तातारी पत्रिका 'सोवियत अदीबयाती' में १९४० के अन्त में इस "एर्डीगे"

नामी काव्य को सक्षेप मे तातार-लेखक एन० इसानवेत ने उप-स्थित किया है। इस काव्य का नायक तातार राष्ट्र का लोकप्रिय नायक बनता जा रहा है।

एडीगे गोल्डन होर्ड के बड़े जागीरदारो मे से एक था। यह एक प्रमुख फौजी कमाण्डर और नेता था और तख्तामीश और तैमूरलंग का अनुयायी था। बाद मे यह गोल्डन होर्ड का अमीर बन गया। इसने रूसी शहरो और गावो पर विध्वसात्मक आक्र-मण किये। कहा जाता है कि १४०८ मे एडीगे ने मास्को पर किये जाने वाले एक विनाशक तातार-मंगोल आक्रमण का नेतृत्व किया। मास्को के निकट के अनेक शहरो निज़नी-नोवो-ग्रोड, पेरेयस्लावल, रोस्तोफ़, सेटपुखोव आदि को इसने जला दिया। मास्को पर कर लगाया। लौटती बार रीजान को खाक मे मिला दिया तथा हजारो रूसियो को गुलाम बनाकर ले गया।

दूसरे शब्दो मे, एडीगे ने १४ वी सदी के उस तातार-खान जैसा व्यवहार किया जो कि मास्को निवासी महान् रूसियो से लडा था। निश्चित रूप से एडीगे किसी भी देश मे एक अच्छे नागरिक का आदर्श नही बन सकता। किन्तु न १३ वी सदी का रूसी योद्धा एलैक्जैन्डर नेवस्की और न भीषण इवान, न पीटर और कैथराइन महान् और न जनरल सुवारोव ही ऐसे आदर्श हो सकते है। क्योकि अठारहवी सदी मे इन पिछले सब व्यक्तियो ने लडाइया लडी तथा समस्त यूरोप मे क्रान्तियो को कुचला। फिर भी १६३६ मे इन अत्याचारियो और लुटेरों को इतिहास के कूडे से क्रेमलिन ने निकाला, जहा कि शुरू के बोल्शे-विको ने इन्हे फेककर उचित ही कार्य किया था। इन्हे झाडा-पोछा गया। सोवियत रग की गहरी कूची इन पर फेरी गई तथा नये नायक (हीरो) बताकर इन्हे सोवियत यूनियन को पेश किया गया।

तातारो ने सोचा कि—"अपने राष्ट्रीय नायको के लिए १६४०

लिए, सोवियत शासन पिछले कुछ वर्षो से घुडसवार फौज के जनरल तथा यूक्रेन के राष्ट्रीय नायक बोग्दन चमेलनित्स्की नामी एक यूक्रेनियन के गुणो का गान कर रहा है। युद्ध-काल में बोग्दान चमेलनित्स्की के नाम पर एक महत्वपूर्ण फौजी तमगा तैयार किया गया और पैरेयास्लाव शहर का नाम बदलकर पैरेयास्लाव-चमेलनित्स्की कर दिया गया।

इस सारी कार्यवाही का सार यह है कि जनवरी १६५४ को चमेलनित्स्की ने यूक्रेन को रूस मे सम्मिलित किया था और मास्को इस बात पर बल देना चाहता है। अब यदि हम जारशाही के युग मे रहने वाले यहूदी के सामने "चमेलनित्स्की" का नाम ले, तब उसका उत्तर तुरन्त मिलेगा "विनाशकारी"। बोग्दन चमेलनित्स्की यहूदियों को कत्ल करने के अपने कारनामो के लिए प्रसिद्ध हैं।

यूक्रेनियन राष्ट्रीयता आज इतनी दृढ है कि उसे दबाया नही जा सकता। सदैव से इस राष्ट्रीयता का अर्थ यहूदी-विरोध रहा है।

साथ ही, १६१७ को वोल्शेविक क्रान्ति के बाद से अब प्रथम वार ऐसी बातो के चिह्न प्रकट हुए है जिनसे सरकारी तौर पर यहूदी-विरोध किये जाने का पता चलता है। यह विरोध उदाहरण के रूप मे इस शक्ल मे है कि रूसी विदेशी नौकरियो से तेजी से यहूदियो को पृथक कर दिया गया है और कुछ शिक्षा सस्थाओ, विशेषकर मास्को-स्थित कूटनीतिक-स्कूल मे, प्रविष्ट हो सकने वाले यहूदियो की सख्या मे कमी कर दी गई है। मास्को-स्थित विदेशी मामलो के सोवियत-मन्त्रि-मंडल मे सैकडो यहूदी कार्य करते थे। अब बहुत थोडे रह गए हैं। यही झुकाव सरकार के अन्य विभागो मे भी दृष्टिगोचर होता है। विश्वस्त सूचनाओ के अनुसार कम्युनिस्ट दल के यहूदी सदस्यो मे से अधिकाश इस सस्था को छोड चुके है।

क्रेमलिन ने महान् रूसी राष्ट्रीयता को तब चालू किया, जबकि २४ मई १६४५ को एक पार्टी के अवसर पर स्टालिन ने मास्को मे यह कहने का साहस कर दिखाया कि 'महान रूस सोवियत यूनियन का

प्रभुत्व राष्ट्र हैं'। तब यह स्थिति पैदा होनी अनिवार्य थी। जार ने तो रूसियों को प्रभुसत्ता देने का पुराना नियम एक जाति के प्रभुत्व की बात हुई। इसका परिणाम दूसरी जातियों की हीनता हुई।

अखिल स्लाववाद, अखिल जर्मनवाद और अखिल जापानवाद एक दूसरे से मिलते-जुलते सिद्धान्त हैं। इनमें घर में भेद-भाव तथा विदेशों में विस्तार की भावना छिपी हुई प्रकट होती है।

रूस में राष्ट्रीय मत-भेद हाल ही में पैदा हुए हैं और अभी तक बहुत से विदेशियों की दृष्टि इन पर नहीं पड़ी। लेकिन सोवियत-यूनियन के अल्पमतों ने, विशेषकर मुसलमानों और यूक्रेनियनों के कुछ दलों ने महान् रूसी राष्ट्रीयता के विरुद्ध युद्ध-काल में प्रतिक्रिया प्रदर्शित की है।

सौ से भी अधिक अरूसी और अस्लाव जातीय अल्पमतों में रूसी राष्ट्रीयता ने, जिसे कि जार्जिया निवासी स्टालिन ने १९३४ से बड़े परिश्रम से पैदा किया, उस बेचैनी को और भी बढ़ाने का कार्य किया, जो कि मास्को की तानाशाही सदा से उनमें पैदा करती रही है। अल्पमतों को व्यापक सांस्कृतिक स्वायत्त-शासन तो प्राप्त था, किन्तु आर्थिक और राजनैतिक मामलों में क्रेमलिन के कठोर केन्द्रीय-करण के कारण सिद्धान्ततः से मिला स्वायत्त-शासन रद्द हो जाता था। सोवियत-यूनियन में अधिक केन्द्रित सरकार संसार में दूसरी नहीं। फैडरल सरकार के अधिकारी प्रत्यक्ष रूप से समस्त देश की आर्थिक नीति पर नियन्त्रण रखते हैं। अल्पमतों के तथाकथित स्वायत्त-शासनों को मास्को की आज्ञा का पालन करना होता है। इससे अवश्य लाभ है। इससे राष्ट्रीय निर्माण योजनाओं तथा प्रयत्नों को समबद्ध करने में सहायता मिलती है। लेकिन यह किसी भी कार्य का प्रारम्भ करने की स्थानीय क्षमता और स्वतन्त्रता की समाप्ति करने वाली वस्तु होती है। एक सर्वशक्तिमान् फैडरल सरकार ने सोवियत फैडरलवाद को एक उपहास की वस्तु बना दिया है।

कभी भविष्य में यूरोप के संयुक्तराष्ट्रों में, फैडरल भारत में या

संयुक्त एशिया में, केन्द्रीय सरकार और विभिन्न राष्ट्रों, प्रान्तों या राष्ट्रीय इकाइयों की सरकारों के बीच, किसी समझौते पर पहुंचने की आवश्यकता को अनुभव किया जायगा। किन्तु तानाशाही, भले ही यह हिटलर की हो या स्टालिन की, चाहे यह फासिस्ट हो या कम्युनिस्ट, ऐसे किसी समझौते को स्वीकार नहीं करती। चारों तरफ के लोगों के हितों की चिन्ता न करते हुए केन्द्र की समस्त शक्ति पर यह एकाधिकार जमा लेती है।

तानाशाही और राष्ट्रीयता के मेल ने घरेलू और विदेशी सोवियत् नीतियों की प्रारम्भिक अन्तर्राष्ट्रीयता को नष्ट कर दिया है। संयुक्त राष्ट्रों और दूसरी कान्फ्रेंसों में सोवियत् प्रतिनिधि अब "राष्ट्रीय सर्वोच्च सत्ता" पर बल देते हैं। इसीलिए वे परमाणु-बम के नियन्त्रण के बारे में अमरीकन योजना का विरोध तथा यूरोप के आर्थिक पुनरुद्धार के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को अस्वीकार कर रहे हैं। इसीलिए ही संयुक्त राष्ट्र के चार्टर में उल्लिखित वीटो के अधिकार की समाप्ति पर मास्को को आपत्ति है। यह वीटो का अधिकार राष्ट्रीय सर्वोच्चसत्ता की साकार प्रतिमा है। इसीलिए ही विश्व-सरकार के प्रति सोवियत् को आपत्ति है, जिसे कि उसके पत्र प्रतिक्रियावादी समझते हैं।

राष्ट्रीयता तानाशाही को कठोर बना देती है और तानाशाही राष्ट्रीयता को ऊंचा कर देती है।

किन्तु राष्ट्रीयता अपेक्षाकृत कम चेतन और विस्फोटक स्वरूप में प्राय सब ही प्रजातन्त्रों में विद्यमान रहती है। यह उनकी दुर्बलता का एक अंश होती है। प्रजातन्त्रीय संसार की दुर्बलता का भी यह एक अंश है क्योंकि यह इसको हिस्सों में बांट देती है और उसमें घृणा का संचार करती है।

आर्थिक और राजनैतिक राष्ट्रीयता साम्राज्यवाद और युद्धों की सृष्टि करती है। ये दोनों ही रंग-भेद और जातीय भेद-भाव पैदा करती हैं। ये ईसाई धर्म के प्रतिकूल, अप्रजातन्त्रीय और अनैतिक वस्तुएं

है। आज की दुनिया का राष्ट्रीयता एक अभिशाप है। प्रोफेसर अल्बर्ट एन्स्टेन का कथन है—"यूरोप का अन्त राष्ट्रीयता द्वारा हुआ है।

यदि राष्ट्रीयता निरन्तर बढ़ती गई, तब सभ्यता एकतन्त्रवाद के जाल के फेर में पड़ जायगी। अब भी यह बढ़ रही है। चिरकालिक विदेशी शासन के कष्ट और विवशता ने बहुत-से भारतीयों को भारतीयता की भावना से भर दिया है तथा उनकी पूर्णतया उचित स्वतन्त्रता की इच्छा को राष्ट्रीयता के उन्माद से परिपूर्ण कर दिया है। फिलस्तीन के आतंकवादी यहूदी नवयुवक गर्व-निरत नात्सी हैं। अमेरिका के एक अनुदार (टोरी) सीनेटर ने जो कि एक बिगड़ी हुई राजनैतिक पद्धति के अनुकूल तथा दक्षिणी राज्यों की प्रत्येक विनाशशील और अनुदार वस्तु के प्रतीक हैं, सार्वजनिक रूप से यह कहा है कि एक सम्मानित अमरीकन सरकारी नौकर इसीलिए पूरा अमरीकन नहीं, क्योंकि उसके माता-पिता ७० वर्ष से अधिक समय हुआ आस्ट्रो हंगरी में पैदा हुए थे। आज भी दक्षिणी (संयुक्त राष्ट्र अमरीका का दक्षिण भाग) राजनीतिज्ञ खुले रूप से 'श्वेत रंग के लोगों की प्रभुता' का प्रचार करते हैं और कैथोलिकों, हब्शियों और यहूदियों के विरुद्ध संगठन करते हैं। मिश्र में इस बात पर बल दिया जाता है कि विदेशी लोग देश में प्रविष्ट होते समय और इससे विदा होते समय अपने धर्म की घोषणा करें। भारत में हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं। हिन्दू अछूतों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। यहूदियों और अरबों में शत्रुता है। ईसाई और यहूदी आपस में भाई-भाई की तरह व्यवहार नहीं करते। एक समय के मध्य यूरोप के सबसे अधिक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र चैकोस्लोवेकिया ने कम्युनिस्टों द्वारा नेतृत्व की गई सरकार से हंगरी और जर्मनी के लोगों के विरुद्ध कदम उठाया, ताकि जातीय तौर पर वे "शुद्ध" (चाहे इसका कुछ भी अर्थ क्यों न हो) और सब स्लाव हो सकें।

प्रजातन्त्र कैसे खतम होते हैं, यह इस बात को बताता है। राष्ट्रीयता एक-एक रोम, एक-एक स्नायु में व्याप्त होकर धीरे धीरे स्वतन्त्र प्रजातन्त्र

को सत्यानाशी एकतन्त्रवाद मे परिवर्तित कर देती है। युद्धोपरान्त की राष्ट्रीयता की बढ रही कठोरताए, अन्य परिस्थितियो के कारण पहले से ही तिरस्कृत, प्रजातन्त्रीय पद्धति पर हमले कर रही हैं। इसके परिणाम विनाशकारी है।

"सब व्यक्ति जन्म से समान होते हैं।" प्रजातन्त्र का आधार इस बात पर है। इस आधार का तिरस्कार होता है, यदि एक आदमी को अपनी नाक के रूप के कारण, या अपने जन्म के स्थान के कारण या अपने धर्म के कारण या अपनी चमडी के रग के कारण, या उच्चारण के ढग के कारण, या उसके नाम की "विदेशी" ध्वनि के कारण या उसके परिवार वालो के विश्वासो या कार्यों के कारण बराबर का न समझा जाय। जिन लोगो ने अपने माता-पिता का स्वयं चुनाव किया हो, केवल उनको ही ऐसे दण्ड देने का अधिकार होना चाहिए।

ऐसे व्यक्तियो को जो कि अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता और जीवनियो का मूल्य समझते है, फासिज्म और कम्युनिज्म से लडते समय राष्ट्रीयता, जातीयता या वर्ग और जाति की नीचता के प्रत्येक प्रदर्शन पर इसके विरुद्ध अपने आक्रमणो को केन्द्रित कर देना चाहिए। दुनिया में एक ही विशिष्ट वर्ग (आरिस्टोक्रेसी) विद्यमान है और इसके द्वार उन समस्त स्वच्छ चरित्र वालो और ऊ ची नैतिकता के पोषको के लिए खुले हुए हैं, जो अपने साथी मानवो की सहायता करते हैं। राजनीतिज्ञो और कूट-विद्या-विशारदो के लिए भी इस वर्ग मे पर्याप्त स्थान है। प्रश्न यह है कि इनमें से कितने व्यक्ति इसके सदस्य बनने का यत्न करते है।

पर्याप्त कारणो के अभाव से यूनानी शाह को एथन्स ने अपनी गद्दी पर लौट आने दिया गया। दक्षिणपक्षी, राजतंत्र मे विश्वास रखने वाले लोग, शाह के चारो ओर जमा हो गए। कम्युनिस्टो ने, जो कि सदैव प्रथम और सबसे तेज रहते हैं, खतरे का शोर मचा दिया और राजतंत्र-विरोधी अपने झण्डे के तले आ जुटने की बीच के व्यक्तियो से माग की। क्योंकि प्रतिक्रिया का खतरा वास्तविक था, बहुत-से लोग साथ आ मिले। इस पर शाह के साथियों ने बढते हुए कम्युनिज्म की ओर सकेत किया और अधिक अनुदार नरम-दलीय लोगो से शाह का समर्थन करने की प्रार्थना की। कुछ ने ऐसा किया। इस बात ने कम्युनिस्टो को भरती के लिए नया तर्क प्रदान किया और इसको वे प्रभावशाली ढग से कार्य मे लाए। कम्युनिस्टो की सफलता ने इसके बदले राजतन्त्रों के समर्थको को उत्तेजित किया कि वे भी बीच के लोगो के एक दूसरे भाग को छोर पर स्थित दक्षिण-पक्ष मे खीच लावे।

यदि यह ढग काफी देर तक चालू रहे तो बीच के समस्त दल लुप्त हो जायगे और केवल छोर पर के दो दल ही शेष रह जायगे। इनके बीच में किसी स्थान या पुल की कोई गुंजाइश शेष नही रहेगी। तब ये केवल आपस मे लड सकते हैं।

फ्रांस, इटली चीन और अन्य बहुत से देशो में, यहाँ तक कि एक हल्की सीमा तक अमरीका में भी, समाज के इस प्रकार दो छोरों पर चले जाने का खतरा उपस्थित हो गया है। प्रजातन्त्रीय ससार मे शाति के लिए यह सबसे बडा राजनैतिक खतरा है। क्रम से समस्त देशों में बढते हुए छोरों के आपसी झगडे से एक अतर्राष्ट्रीय गृह-युद्ध का खतरा उपस्थित हो गया है और शायद यह तीसरे महायुद्ध का भी खतरा है।

युद्ध को बचाने और प्रजातन्त्र के उद्धार का उपाय मध्य पक्ष को फिर दृढ बनाना और सिरों या छोरों पर स्थित प्रतिक्रियावादी और कम्युनिस्ट पक्षों को कमजोर करना है।

दोनों छोरों पर स्थित पक्ष सदैव ही बीच के उदार पक्ष को मैदान से भगा देने की चेष्टामें संलग्न रहते हैं। अमरीका जैसे देश में प्रतिक्रियावादी दल यह अनुभव करता है कि यदि वह केवल यह दिखा सके कि कम्युनिज्म एक ऐसा खतरा है जिसे वही दूर कर सकता है, तो वह अमरीका पर शासन कर सकता है। फ्रांस जैसे देश में कम्युनिस्टों को प्रतिक्रियावादियों से अकेले लड़ने पर अपनी विजय का पूर्ण विश्वास है। इसलिए फ्रांसीसी कम्युनिस्ट घोषणा करते हैं कि एक ही युद्ध हो सकता है और वह भी केवल प्रतिक्रियावादियों से, ऐसी अवस्था में जो लोग प्रतिक्रिया के विरुद्ध हैं उनके लिए कम्युनिस्टों के साथ मिल जाना आवश्यक है। प्रत्येक सिरे पर स्थित पक्ष मध्य-पक्ष की समाप्ति करके तथा अपने और अपने विपक्षी सिरे के बीच चुनाव करने को लोगों को बाध्य करके अपनी विजय की आशा करता है।

कभी-कभी, जैसे कि चीन में, कम्युनिस्ट अपने-आपको मध्यपक्षीय और प्रजातन्त्रवादी के रूप में भी प्रदर्शित करते हैं। इनके विदेशी मित्र उन्हें एक सीधे-सादे शब्द "कृषि-सुधारक' द्वारा दुनिया के सम्मुख उपस्थित करते हैं। वास्तव में वे "कृषि-सुधारक" हैं और इन लोगों की चीन को अत्यधिक आवश्यकता भी है। किन्तु चीनी कम्युनिस्टों की भी एकदलीय सरकार है और इसके अतिरिक्त वे निरन्तर मास्को की नीति को स्वेच्छा से स्वीकृति प्रदान करते रहते हैं। यदि चीनी कम्युनिस्टों को मध्य-पक्ष के रूप में स्वीकार कर लिया गया तो किसी वास्तविक मध्य-पक्ष के लिए वहाँ कोई अवसर शेष नहीं रहेगा।

हिटलर से पूर्व जर्मनी में कम्युनिस्ट प्रायः ऐसी नात्सी योजनाओं का समर्थन किया करते थे जिनका लक्ष्य प्रजातन्त्र को कमजोर बनाना होता था। यह पूछने पर कि वे ऐसा क्यों करते हैं, वे कहते थे कि यदि प्रजातन्त्र का पतन हो जाय तो नात्सी पदारूढ़ हो जायगे। नात्सियों के असफल रहने पर वे कम्युनिस्टों द्वारा जीत लिये जायगे।

छोर पर स्थित उग्रपन्थी लोग शक्ति प्राप्त करने का मार्ग मध्यपक्षीय उदार लोगो की लाशो पर गुजर कर जाना समझते हैं।

स्वभावत हिटलर के पूर्व के दिनो मे कम्युनिस्टो ने अपने आक्रमण सामाजिक प्रजातन्त्रवादियो (सोशल डेमोक्रेट) पर केन्द्रित किये। वे सामाजिक प्रजातन्त्रवादी समाजवाद और स्वतन्त्रता मे विश्वास रखते थे। कम्युनिस्ट तानाशाहीयुक्त समाजवाद की पैरवी करते हैं। प्रजातन्त्रीय होने के कारण जर्मन-सामाजिक प्रजातन्त्रवादी नात्सी-विरोधी थे और इसीलिए वे कम्युनिस्ट-विरोधी भी थे। इसलिए कम्युनिस्टो ने नाम "समाजवादी-फासिस्ट रखा। अमोत्पादक दुष्प्रयोगो मे कम्युनिस्ट अपना सानी नही रखते। कम्युनिस्टो और सामाजिक प्रजातन्त्रवादियो के बीच की कडवाहट ने हिटलर को शक्ति दिलाने में सहायता की।

इस भीषण पाठ और समस्त यूरोप में फासिज्म के खतरे के कारण प्रजातन्त्रीय स्पेन, फ्रास और अन्य देशो मे एक सयुक्त या लोकप्रिय मोर्चे का अस्तित्व हुआ। उदार पक्षियो, समाजवादियों और कम्युनिस्टो ने फासिज्म के विरुद्ध सहयोग किया। मास्को ने इस सहयोग का प्रारम्भ और इसका पालन-पोषण किया।

ऐसी सब सम्मिलित गुटबन्दियो मे कम्युनिस्टों ने सबसे अधिक परिश्रम किया और सबसे अधिक कुरबानिया दी। किन्तु प्रत्येक मामले मे उन्होने सयुक्त या लोकप्रिय मोर्चे पर अधिकार या नियन्त्रण प्राप्त करने की कोशिश की और कई बार वे इसमे इतने सफल हुए कि गैर-कम्युनिस्टो ने "फिर कभी नहीं" ऐसा प्रण करके इस प्रकार के सहयोग को समाप्त किया।

गैर-कम्युनिस्टों ने पाया कि कम्युनिस्टो को केवल शक्ति की लिप्सा है और इसे प्राप्त करने के लिए उन्हे कोई वस्तु नहीं रोक सकी। उन्होने झूठ बोले और वे क्रेमलिन की आज्ञाओ को मानते रहे।

लोकप्रिय मोर्चों का जो प्रयोग चौथी दशाब्दी के पिछले आधे वर्षों

में किया जा रहा था, सहसा ही, १९३९ के अगस्त में स्टालिन-हिटलर समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद समाप्त हो गया। नात्सी-विरोधी स्टालिन के अनुयायियों के साथ मिलकर कैसे कार्य कर सकते हैं, जबकि स्टालिन का नात्सियों से निकट सम्पर्क हो? कम्युनिस्ट फासिस्ट-विरोधी होने का दावा कैसे कर सकते हैं, जब कि हिटलर के विरुद्ध इंगलैंड और फ्रांस में लड़े जा रहे युद्ध में वे तब तक रोड़े अटकाते रहे, जब तक कि हिटलर ने रूस पर आक्रमण नहीं कर दिया? स्पष्टतः कम्युनिस्टों के "फासिस्ट-विरोध" का अर्थ रूस से प्रत्येक बात में सहमति थी, रूस चाहे फासिस्टों की सहायता कर रहा हो और चाहे यह सहायता प्रजा-तन्त्रों के मूल्य पर भी दी जा रही हो।

इस दिन के बाद से संसार ने एकतन्त्रवादियों की नीतियों और चालों के बारे में एक अधिक गहरी जानकारी प्राप्त कर ली है। एकतन्त्रवादी, लाल, पीले, भूरे या काले किसी भी रंग के हों, वे सब ही प्रजातन्त्रों के शत्रु हैं। उनसे सन्धि करना, समय और स्थान को खोना है। एकतन्त्रवाद के विरोधी एकतन्त्रवादियों पर विश्वास नहीं कर सकते और इसीलिए उनके साथ मिलकर उनके लिए कार्य करना भी सम्भव नहीं। महत्व के स्थानों पर कम्युनिस्टों की उपस्थिति किसी भी एक देश या संसार भर के देशों की ट्रेड-यूनियनों, मजदूर और उदार फासिस्ट-विरोधी हलचलों को संगठित करने में एक बड़ी बाधा है, क्योंकि लाखों प्रजातन्त्रवादी प्रजातन्त्र-विरोधियों से किसी भी प्रकार का सहयोग स्वीकार नहीं करेंगे।

अच्छे आदमी अनेक बार यह चीज असुविधाजनक अनुभव करेंगे कि एक अच्छे उम्मीदवार को चुनवाने, साम्राज्यवाद से लड़ने, जातीय भेद-भाव को मिटाने अधिक मकानों का प्रबन्ध करने आदि कामों में कम्युनिस्टों द्वारा पेश की गई सहायता को अस्वीकार कर दिया जाय। किन्तु किसी भी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कम्युनिस्ट जो साधन प्रयोग करेंगे और एक सच्चा प्रजातन्त्रवादी केवल उन ही साधनों को प्रयोग में ला

सकता है जो कि लक्ष्य तक पहुचने के लिए योग्य समझे जायं। अन्यथा सारा कार्य ही अनैतिक हो जाता है।

एकतन्त्रवादियो या बिगड़े हुए राजनीतिज्ञो के साथ सम्मिलित होकर कार्य करने के परिणाम इतनी दूर तक प्रभाव डालने वाले होते है कि इससे वह आंशिक भलाई भी नष्ट हो जाती है जो कि प्राप्त की गई हो।

जो समाजवादी या उदारपक्षीय लोग कम्युनिस्टो के साथ मिलकर कार्य करते है, वे एक बात पर टिककर न रहने के अभियोग का खतरा उठाए बिना कम्युनिज्म पर चोट नही कर सकते। कम्युनिस्ट सोशलिस्टो, ट्रेड-यूनियनो और उदारपक्षियो का सहयोग अपने स्वाभाविक शत्रुओ और प्रतिस्पर्द्धियो का मुख बन्द करने के लिए चाहते है। किन्तु उदाहरण के रूप में, यदि सोशलिस्ट कम्युनिस्टो को एकतन्त्रवादी समझते हुए उनकी आलोचना या उनका भण्डा-फोड करे तो जनता प्रजातन्त्रीय समाजवादियो और कम्युनिस्टो के बीच के अन्तर को नही समझ पाती। ऐसी परिस्थितियो मे कम्युनिस्टो को अपने अधिक सम्पन्न साधनो, शक्तिशाली प्रचार और अधिकारपूर्ण नियन्त्रण के बल पर चुनावो मे सफलता प्राप्त हो जाती है।

कम्युनिस्ट गैर-कम्युनिस्टो को श्रोताओ की भीड, रेडियो-प्रोग्राम और प्रचार भले ही प्रदान करे, किन्तु गैर-कम्युनिस्टो को इनके लिए बडा मूल्य चुकाना होता है। न्यूयार्क के मैडिसन स्क्वायर बाग मे दिये अपने प्रसिद्ध भाषण मे, १२ सितम्बर १६४६ को, श्री हैनरी ए० वालेस ने रूसी नीति की हल्की आलोचना करते हुए कुछ शब्द कहे थे। सभा-भवन कम्युनिस्टो से खचाखच भरा हुआ था और उन्होने विरोध मे शोर प्रारम्भ कर दिया। अपने भाषण की शेष तैयार प्रतिलिपि मे श्री वालेस को वे सब आगे के अंश छोड देने पडे, जिनमे रूस के विरुद्ध कोई भी टिप्पणी थी। कम्युनिस्ट सहयोग मे फसे दूसरे वक्ता भी प्राय यूनान के बारे मे ब्रिटिश और अमरीकन नीति पर हमले

और फिलस्तीन में ब्रिटिश कार्यों आदि की निन्दा किया करते हैं। किन्तु वे उन अत्याचारों को अपनी दृष्टि से ओझल कर देते हैं जो कि सोवियन प्रभाव-क्षेत्र में रूसी और कम्युनिस्ट जनता और प्रजातन्त्रों के विरुद्ध निरंतर कर रहे हैं। यहाँ यह बात स्पष्ट पता चल जाती है कि रूस का गान्धी साधनों के महत्त्व पर इतना बल क्यों देते थे। [illegible] उनकी निष्ठा का यह एक अंग था। साधना के चुनाव में अन्त [illegible] की जाँच की भावना को भुला दीजिए और यह बात सम्भव हो जायगी कि आप बेईमान बन जावें।

एक गैर-कम्युनिस्ट को, जो कि कम्युनिस्टों के साथ कार्य करने को तैयार है, इस स्थिति का सामना करना होगा। मान लीजिए कि कम्युनिस्ट अपने पक्ष में सम्मिलित गैर-कम्युनिस्टों के समर्थन से एक राष्ट्रीय सरकार बना सकते हैं। ऐसी सम्भावना बहुत-से यूरोपियन देशों में पैदा हो चुकी है। बिना किसी अपवाद के कम्युनिस्ट [illegible] तब अपनी स्थिति से लाभ उठाते हुए सरकार के स्थायी रूप से बने रहने और प्रजातन्त्रीय संस्थाओं पर चोट करने के लिए [illegible] निकाल लेंगे। इसका अर्थ तानाशाही होगा। या यदि एकतन्त्रवाद के विरोधियों ने अपनी शक्ति संगृहीत की, तो इसका अर्थ गृह-युद्ध होगा। सैद्धान्तिक रूप में, कम्युनिस्टों को सहयोग देने वाला एक प्रजातन्त्रवादी व्यक्ति, एक ऐसा व्यक्ति हुआ, जो कि तानाशाही की सहायता करे या उसे उत्साहित करने के लिए तैयार हो।

इसके अतिरिक्त कम्युनिस्ट सदैव साम्यों के कार्यों पर [illegible] की मुहर लगा देते हैं। उन्होंने सोवियत-नाजी समझौते पर भी [illegible] की मुहर लगा दी थी। ऐसी अवस्था होने पर गैर-कम्युनिस्ट क्या करें? क्या वे उनके साथ ही रहें या कुछ महीनों के लिए उनसे अलग हो जायँ? परमाणु-बम को गैर कानूनी घोषित करने वाली [illegible] योजना, अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-सरकार की दिशा में [illegible] आगे बढ़ा हुआ कदम थी। इस योजना को सोवियत ने ठुकरा दिया। [illegible]

कारणों के सबब रद्द कर दिया। कम्युनिस्टों ने भी हाँ में हाँ मिला दी। सोवियत्-सरकार ने अर्जेण्टाइना के तानाशाही पैरोन से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित कर लिये। इस पर अर्जेण्टाइना के कम्युनिस्ट भी पैरोन का समर्थन करने लग गए। रूसी प्रमाण-पत्र मिलते ही क्रांतिकारी और उदारपक्ष भी प्रतिक्रियावादी बन जाते हैं। ऐसी अवस्था में गैर-कम्युनिस्ट कम्युनिस्टों का साथ कैसे दे सकते हैं? ऐसा करना अवसरवादिता को सिद्धांतों से ऊपर रखना होगा, विचारों से अधिक महत्व शक्ति को देना होगा। यह तो एकतन्त्रवाद की प्रारम्भिक नींव रखने वाली बात हुई। इस प्रकार एकतन्त्रवादियों के साथ मिलकर सम्मिलित पग उठाना एकतन्त्रवाद के विरोधियों में एकतन्त्रवाद का प्रचलन करना होता है।

एक कम्युनिस्ट केवल-मात्र रूस का ही मित्र नहीं होता। वह तानाशाही में भी विश्वास रखता है। वह आतंक में भी विश्वास रखता है। वह एकतन्त्रवाद के हथकण्डों में भी विश्वास रखता है और इनका प्रयोग भी करता है। एक ईमानदार, स्थिर, कम्युनिस्ट को यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि वह या तो रूस द्वारा अपने देश का शासन कराना चाहता है, (पोलैंड रूमानिया, हंगरी और दूसरे क्षेत्रों के कम्युनिस्ट इन देशों के रूसी शासन में पुर्जों का-सा काम देते हैं) या एक ऐसी तानाशाही द्वारा अपने देश का शासन चाहता है जो कि रूस के समान और इससे सम्बद्ध हो। जो लोग इस अस्वाभाविक इच्छा में हिस्सा बाँटने के लिए तैयार नहीं ऐसे सब लोगों द्वारा त्यक्त एक छोटी-सी अलग-थलग कम्युनिस्ट पार्टी संयुक्त राष्ट्र अमरीका जैसे देश में, जहां संख्या की दृष्टि से कम्युनिस्ट बहुत कम हैं कानूनी तौर पर कार्य करती हुई, अपने विचारों और लक्ष्योंके बाँझपन के प्रतिदिन सबूत देगी। किन्तु गैर कम्युनिस्ट सहयोगियों से सम्बद्ध कम्युनिस्ट, मजदूर और उदार हलचलों को टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं, और करते हैं इस प्रकार दक्षिण पक्षीय अनुदार दलों को दृढ़ बना देते हैं। कम्युनिज्म प्रतिक्रियावादियों की सबसे महान् उत्तराधिकार में मिलने वाली सम्पत्ति

है और प्रतिक्रियावादी कम्युनिस्टों को। जितने अधिक मजबूत कम्यु-
निस्ट होते हैं, उतने ही अधिक मजबूत वे प्रतिक्रियावादियों को बना
देते हैं। और जितने अधिक मजबूत प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं, उतने
ही अधिक मजबूत कम्युनिस्ट बन जाते हैं।

इसके विपरीत एक मजबूत, केन्द्र के बाईं ओर झुका हुआ मध्य
पक्ष, दोनों छोरों पर स्थित पक्षों पर चोट करता है। उदाहरण के रूप
में, इंग्लैण्ड में, ब्रिटिश मजदूर-सरकार की स्थापना के अठारह मास बाद,
अपने ही आंकड़ों के अनुसार ब्रिटिश कम्युनिस्ट दल के सदस्यों की
संख्या तैंतालीस हजार से गिरकर तीस हजार रह गई। केन्द्र से बाईं
ओर झुकी हुई सरकार के अस्तित्व में आने पर, जिसका समर्थन मज-
दूर और मध्य वर्ग करता था, ब्रिटिश कम्युनिस्ट बिल्कुल ही नगण्य
संख्या में रह गए और उनका प्रभाव अनुदारदलीय टोरियों को निरु-
त्साहित करने के सम्बन्ध में भी इतना पड़ा कि १९४६ की ग्रीष्म ऋतु
में ब्लैकपूल में हुए अपने वार्षिक अधिवेशन में विन्स्टन चर्चिल को उत्तर
में अपने दल की सहायता करने की मांग करनी पड़ी।

भारत में गान्धी-नेहरू-नेतृत्व में राष्ट्र ने उत्तम स्वतंत्रता की प्राप्ति
के लिए बहुत दिनों तक जोर बड़ी लगन के साथ कार्य किया। निरन्तर
प्रगतिशील समाजवादी दल सामाजिक बुराइयों को दूर करने की चेष्टा
कर रहा है। फलस्वरूप कम्युनिस्ट देश या वर्गों के एक-मात्र त्राता के
रूप में अपने-आपको प्रदर्शित नहीं कर सकते। उनकी लोकप्रियता
आनुपातिक रूप से घट गई है। इसी प्रकार निकृष्ट ढंग से प्रतिक्रिया-
वादियों और फासी नेताओं के सफाए के बाद जापान में अप्रैल १९४७
को हुए चुनावों में भी सोशलिस्टों की महान विजय और कम्युनिस्टों
को भीषण पराजय मिली है।

मध्य-पक्ष की स्पष्ट नापसन्दगी और इससे छुटकारा पाने की
समान इच्छा के कारण, दोनों ही छोरों पर स्थित पक्ष, एक ही ढंग से,
एक ही-से हथियारों को काम में लाते हैं। प्रतिक्रियावादियों का कथन है—

"मध्य पक्ष कोई नहीं। प्रत्येक युद्ध-रत प्रजातन्त्री, समाजवादी, लड़ाकू ट्रेडयूनियनिस्ट और न्यू-लीडर (अमरीकन दल) कम्युनिस्ट है।" आतंक फैलाने के लिए वे कहते हैं—"कोई भी खाल ये क्यों न ओट लें, लेकिन भीतर से ये सब लाल अर्थात् कम्युनिस्ट हैं।" छोरों पर स्थित पक्ष या उग्र पन्थ आतंक तनाव हत्या और हिंसा के वातावरण में फलते-फूलते हैं।

कम्युनिस्ट भी ऐसे ही होते हैं। वे प्रतिक्रियावादियों पर चोटें तो करते हैं, किन्तु उनकी सबसे अधिक घृणा उनसे मतभेद रखने वाले उदार-पक्षीय और समाजवादी व्यक्तियों के लिए सुरक्षित रहती है। जो प्रजातन्त्री होने के नाते कम्युनिस्टों और रूस की आलोचना करते हैं, कम्युनिस्टों के लिए वे "प्रतिक्रियावादी" या "फासिस्ट" बन जाते हैं, या वे सबसे खराब वस्तु "ट्राट्स्की पन्थी"। बार-बार की गई चोटों के कारण तथा फुफकारों और बोलियों की मदद से, स्टालिनवादियों की शब्दावली में 'ट्राट्स्की पन्थी' शब्द सबसे घृणित गाली हो गई है। मजे की बात यह है कि इन्हें लियोन ट्राट्स्की के इतिहास या उसके लेखों का प्रत्यक्ष ज्ञान बिलकुल नहीं है।

उदारपक्षियों में से जो दुर्बल हृदय के होते हैं, वे प्रतिक्रियावादियों द्वारा उछाली जाने वाली कीचड़ से डरकर दुबक जाते हैं और पूंजीवाद की बुराइयों के प्रति किये जाने वाले अपने-अपने आक्रमणों को हल्का और उदार बना देते हैं। उदारपक्षियों में से दुर्बल मस्तिष्क वाले इसी प्रकार के कम्युनिस्टों द्वारा डाले गए बुद्धिवादी आतंक से दब जाते हैं। उग्रपन्थी यही चाहते हैं।

प्रजातन्त्रीय विश्व के लिए कार्य करने वा उदार-पन्थियों, समाजवादियों प्रगतिशीलों क्रान्तिकारियों और दूसरे सब लोगों को उग्र-पन्थियों को अपना मुख बन्द न करने देना चाहिए और न उनके आतंक में आना चाहिए। न ही प्रजातन्त्रवादियों को एक उग्रपन्थी से दूसरे की लड़ाई होने की दशा में उनके पुकार मचाने पर उनमें से किसी के

जाल में फँसना चाहिए। प्रजातन्त्र का युद्ध दो मोर्चों पर, दक्षिण-पक्षीय प्रति-क्रियावादियों और कम्युनिस्टों दोनों के विरुद्ध लड़ा जाने वाला युद्ध है। प्रजातन्त्रवादके विरोधियोंसे मैत्री करनेसे प्रजातन्त्र का हित नहीं हो सकता।

प्रजातन्त्रवादियों को प्रतिक्रियावाद और कम्युनिज्म के बीच चुनाव करने की आवश्यकता नहीं। फासिज्म और कम्युनिज्म के बीच भी उन्हें चुनाव नहीं करना है। चुनाव तो उन्हें प्रजातन्त्र और तानाशाही, स्वतन्त्रता की ओर ले जाने वाले तीव्र विकास और गुप्तन्त्रवाद की ओर ले जाने वाली खर्चीली क्रान्ति, महात्मा गांधी की नैतिकता और जनरलिस्सिमो स्टालिन के शक्ति के एक-छत्र अधिकार, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के दूसरे को न दिये जा सकने वाले अधिकार, और खुफिया पुलिस की दुरा मे यदा-कदा बोल सकने के अवसर, ऐसी सरकारें, जो उन मामलों तक ही सीमित हों जो कि व्यक्ति स्वयं न कर सकते हों और वर्तमान विज्ञान भेदों का पता लगाने वाली जासूसी करने वाली और दैनिक जीवन के कार्यों में निरन्तर हस्तक्षेप करने में लगी हुई सरकारें प्रतिष्ठा रखने वाले व्यक्तियों और राज्य की मशीन या पूँजी की प्रमानुषिक एक-छत्र व्यक्तिगत उद्योगों की मशीन के पुर्जे बने हुए मनुष्यों, ऐसे आदमियों, जो कि अपने कार्य और जीवन की परिस्थितियों को निश्चित करने में पूर्ण क्रियात्मक हिस्सा बटाते हों और उन व्यक्तियों जो कि अपने श्रम और समय को उसी तरह बेचते हों जैसे कि एक प्याज का टुकड़ा बेचा जाता है, के बीच करना है।

ये हैं विचारणीय चुनाव की वस्तुएँ।

अपने और कम्युनिस्टों के बीच तथा अपने और दक्षिण-पन्थियों के बीच भी इस प्रकार की गहरी रेखा खींचने के अनन्तर (जहाँ तक फासिस्टों और प्रतिक्रियावादियों का सम्बन्ध है, वे प्रायः केन्द्र के बाद और झुकाव रखने वाले दलों में प्रविष्ट नहीं होते) उदार प्रजातन्त्रवादी और सामाजिक प्रजातन्त्रवादी स्पष्टतया अपने नैतिक और आदर्शवादी लक्ष्यों को बतला सकते हैं और उनकी तरफ आगे बढ़ सकते हैं

नवां अध्याय

नवीन क्या है ?

'जो है' उसके समर्थक पूंजीवाद से अलग किसी प्रकार के परिवर्तन से भयभीत हैं। तनिक से समाजवाद के प्रारम्भ को वे पूंजीवाद का अन्त समझते हैं। उनका कहना है कि हमें पूंजीवाद और समाजवाद के बीच चुनाव करना होगा।

कम्युनिस्ट भी इसी काले या सफेद के बीच चुनाव के सिद्धान्त का प्रयोग करते हैं क्योंकि वे ऐसे लोगों को, जो कि पूंजीवाद से असन्तुष्ट हैं, अपने जाल में फंसाना चाहते हैं।

फिर भी सचाई यह है कि चुनाव पूंजीवाद या समाजवाद के बीच नहीं। विशुद्ध पूंजीवाद कहीं भी नहीं। प्रत्येक प्रजातन्त्रीय देश में समाजवाद पूंजीवाद के साथ-ही-साथ विद्यमान है।

समाजवाद का अर्थ है आर्थिक मामलोंमें सरकार द्वारा हिस्सा लेना। यह कार्य मुख्यतया व्यक्तिगत लाभ के उद्देश्य के विपरीत जनता के हित के लिए किया जाता है। टैनेस्सी घाटी का शासन समाजवादी है। वाशिंगटन का 'ग्राण्ड कूली' बांध, जिसका निर्माण संयुक्त राष्ट्र अमरीका की सरकार ने किया है और जिसकी देख-रेख भी यही सरकार करती है, समाजवादी है। राज्य व म्युनिसिपल कमेटियों द्वारा बसों, ट्रालियों या बिजलीघरों को चलाना भी समाजवाद ही हुआ। एक प्रौढ मस्तिष्क शब्द-मात्र से नहीं डरेगा।

सर्व-साधारण जनता जब यह कहती है कि एक औद्योगिक धन्धे को सार्वजनिक प्रबन्ध में दे देना व्यक्तिगत प्रबन्ध में रखने की अपेक्षा

अधिक लाभदायक है, तब इसे अपने अधिकार में कर लेने की आज्ञा वह सरकार को दे देती है। प्राय ऐसे ही कुछ अन्य कारणों से सरकारें दूसरे नए आर्थिक कार्यों को अपने अधिकार में कर लेती हैं।

प्रथम महायुद्ध के दिनों में सहायता चाहने वाली विदेशी सरकारों को जे० पी० मारगन, दी नेशनल सिटी बैंक इत्यादि अमरीकन बैंकों ने ऋण दिया। दूसरे महायुद्ध के दिनों में सहायता चाहने वाली विदेशी सरकारों को उधार-पट्टे के रूप में अमरीकन सरकार ने सहायता दी। प्रथम महायुद्ध के समय में अपने कार्य को बढ़ाने के इच्छुक व्यक्तिगत रूप से बारूद व शस्त्रास्त्र बनाने वाले लोगों ने बैंकों से सहायता ली। दूसरे महायुद्ध में फौजी कार्यों के लिए किये जाने वाले व्यापारिक विस्तार में से अधिकांश तो स्वयं अमरीकन सरकार ने अपने आप किया।

प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के कार्य करने के ढंग में इतना अन्तर क्यों है ? इसका कारण यह है कि युद्ध के लिए पैसा और शस्त्रास्त्र जुटाने का कार्य इतना बड़ा हो गया था कि उसे व्यक्तिगत व्यापार द्वारा नहीं किया जा सकता था।

अब यूरोप के पुनर्निर्माण और एशिया के निर्माण का कार्य उतना ही महान् है, जितना कि धुरी राष्ट्रों से लड़ने के लिए जो कार्य अमरीका के सम्मुख था, वह महान था। अमरीकन व्यापार, जिसका अनुमान नहीं किया जा सकता, इतनी सम्पत्ति होते हुए भी, युद्ध के व्यय के भार को नहीं उठा सका। वह फिर कंगाल बना दिया गया। यूरोप और अविकसित एशिया, बिना सरकारी सहयोग अर्थात बिना समाजवाद के कैसे युद्ध से भी महान समस्याओं को हल कर सकता है ?

युद्ध-काल में फटे प्रत्येक बम और उसके गोले ने व्यक्तिगत पूंजी का विनाश किया। युद्ध की तैयारियों के कार्यों में लगा प्रत्येक कारखाना और मशीन जीर्ण शीर्ण हो गए। युद्ध-काल में होने वाले मुद्रा विस्तार ने समस्त पूंजी की बचतों का सफाया कर दिया। यह कहा जाता है कि पूंजीवाद युद्धों का कारण है। शायद ऐसा हो। किन्तु इसका

विश्व-व्यापी युद्ध पूंजीवाद की ही समाप्ति करने वाला था।

यूरोप और एशिया मे पूंजी की कमी से कही अधिक महत्वपूर्ण वस्तु पूंजीपतियो और पूंजीवाद मे लोगो के विश्वास की कमी है। फ्रास इटली, जर्मनी और जापान के प्रमुख पूंजीपति नात्सियों और फासिस्टो के सहयोगी थे। इसीलिए इनमे से बहुतो का सफाया या तो उनकी अपनी हा जनता ने या विदेशी अधिकृत शक्तियों ने कर दिया। अब वे अपने देश मे अपनी पूर्व-स्थिति को फिर से प्राप्त नही कर सकते।

मनुष्य एक ही पीढी मे दो महायुद्धो की आग में से कुशलतापूर्वक बचकर नही निकल सकता और इन दो महायुद्धों के बीच के काल मे जो आर्थिक उथल-पुथल, बडे पैमाने पर बेकारी और राजनैतिक अनिश्चितता पैदा हुई, उसका यह निश्चित ही परिणाम था कि जिन आधारभूत विचारो पर आधुनिक समाज की रचना की गई है उनके बारे मे गम्भीर सन्देहो की शुरूआत हो।

छोटे-छोटे औद्योगिकों, छोटे दूकानदारों, अध्यापकों, वकीलो, डाक्टरों दात बनाने वालो, सरकारी नौकरों और छोटे-मोटे किसानो अर्थात् मध्यवित्त के लोगों को, पिछली कुछ दशाब्दियों मे, जहा तक विश्वास का सम्बन्ध है, एक अत्यन्त नाजुक दौर मे से गुजरना पडा। मुद्रा के विस्तार के कारण उनके वेतनो और सचित की गई पूजी का मूल्य गिर गया। छोटा आदमी-या तो बड़ी कम्पनियों या एक सूत्र मे पिरोई गई दूकानो द्वारा कुचल दिया गया या उसे उन्होंने अपने में हजम कर लिया। अरक्षित रह जाने मे उसके अस्तित्व तक का खतरा पैदा हो गया है। ऐसी दशा मे मध्य-वर्ग नये मित्रों की तलाश मे है। राजनैतिक रूप मे यह वर्ग एक तैरता हुआ द्वीप बन रहा है।

आधुनिक औद्योगिक समाज में यह मध्य-वर्ग इतना बडा है कि इस बात का निर्णय करा सके कि देश को किस दिशा की ओर अग्रसर होना है। जर्मनमध्य-वर्ग हिटलर के जाल में फस गया, फलस्वरूप जर्मनी

नात्सी बन गया। ब्रिटेन में मध्यवर्ग ने मजदूरों का साथ दिया। केवल मजदूर-वर्ग के मतों से मजदूर दल को पार्लियामेंट में इतना बड़ा बहुमत नहीं प्राप्त हो सकता था। मध्य-वर्ग ने यह कार्य पूरा किया। मध्य-वर्ग को इससे पूर्व के ब्रिटिश शासक-वर्ग में विश्वास नहीं रहा था। (यह वर्ग संयोगवश स्वयं अपना भी बहुत-कुछ विश्वास खो चुका है।) मध्य-वर्ग और मजदूर-वर्ग युद्ध से पूर्व के ब्रिटिश उद्योगों के ह्रास को देखते आ रहे थे। इस काल में पर्याप्त ब्रिटिश पूंजी विदेशों में लगाई गई थी, जब कि आवश्यकता इस बात की थी कि इसे देश में ही रखा जाय, ताकि नष्ट हो गए धन्धों को फिर से चालू करके देश में मकानों का पर्याप्त प्रबन्ध किया जा सके। ब्रिटिश कोयला-उद्योग व्यक्तिगत प्रबन्ध में बिलकुल शिथिल हो चुका था। इसके लिए न तो पर्याप्त मशीनें थीं, न पर्याप्त पूंजी। जहां तक प्रबन्ध का सम्बन्ध था, यह अत्यन्त खराब था। यही कारण है कि इसका सर्वप्रथम राष्ट्रीयकरण किया गया। व्यक्तिगत पूंजी के खराब काम करने पर ऐसे उद्योग को सरकार अपने अन्तर्गत ले ले इस बात की अधिक सम्भावना होती है।

इसके अतिरिक्त ब्रिटिश जनता ने ब्रिटिश विदेशी नीति का दिवालियापन भी देखा। यदि समय पर कदम उठा लिया जाता तो दूसरा महायुद्ध रोका जा सकता था। किन्तु ऐसा नहीं किया गया। राजनैतिक दृष्टि से परिपक्व होने के कारण ब्रिटिश जनता जानती थी कि साम्राज्य का त्याग करना ही पड़ेगा या वह स्वयं छिन्न-भिन्न हो जावेगा। किन्तु १९ वीं सदी के विचारों से युक्त चर्चिल ने घोषणा कर दी कि वे ऐसा न करेंगे।

अनुदार टोरी दल एक भूतकाल की वस्तु है। ब्रिटिश जनता ने भविष्य की ओर देखा। इसीलिए वहां मजदूर-सरकार स्थापित हो गई। परिवर्तनशील हो रही दुनिया में, एक नए इंग्लैण्ड के निर्माण की इसे आज्ञा मिली।

—

यूरोपियन महाप्रदेश में टूटे हुए दिल वाले लोगों को टूटी हुई दुनिया की मरम्मत के लिए कहा जा रहा है। लम्बी थकावट व पेट-भर भोजन न मिलने के कारण कांपते हुए हाथों और सबसे बुरी बात यह कि धू-धू करती हुई आगों, जिनको दफन नहीं किया जा सका ऐसे मुर्दों और बुझे हुए जीवनों की स्मृति के बीच वे हल चलाते हैं, करनी फेरते हैं, खराद पर काम करते हैं और कलम को धकेलते हुए उससे लिखते हैं। ये लोग मर चुके हैं। वे मर गए थे और अब फिर जिन्दा हो गए हैं। और वे आश्चर्य करते हैं कि यह सब कैसे हुआ? ये लोग जीवन को अद्भुत व भयभीत दृष्टि और खोज रही आंखों से देखते हैं। जो कि प्राणी मर चुके थे, उन्हें केवल बारह सौ कैलोरी पर अपने अस्तित्व को ऊपर उठाना होगा। इस काम में आशा की एक हल्की-सी झलक भी उनकी सहायक नहीं। एक नई भावना ही उनकी आत्मा को जीवित कर सकती है। पुरानी भावना तो उनके लिए कब्रिस्तान थी, इसी के अन्तर्गत वे दफनाए गए थे।

अमरीका और पश्चिमी संस्कृति की मां यूरोप, वह यूरोप जो एशिया में उत्पन्न धर्मों को अपनी पूर्ण परिपक्वता तक पहुंचाने वाला है, आज बुरी तरह छिन्न-भिन्न हो गया है। यदि यूरोप न बच सका, तो हाथ-पांव से हीन हो, सभ्यता बिलकुल पंगु हो जायगी ठीक उस व्यक्ति के समान जिसकी दृष्टि धुंधली पड़ चुकी हो। यूरोप को फिर पूर्ण जीवित करने के लिए विज्ञान, प्रगति, सम्पत्ति, दया और स्वतन्त्रता के समस्त साधनों के उपयोग की आवश्यकता होगी।

धीरे-धीरे घिसटते दैन्य एशिया को, उस एशिया को जो चिर-निद्रा में आसीन एक महादानव है, ऐसे एशिया को जो कि एक ऐसे मांस-पिण्ड के समान है, जिसमें किसी क्रम-बद्ध मस्तिष्क का आविर्भाव न हुआ हो, तथा समस्त संसार के महाप्रदेशों की सम्मिलित आबादी से भी कहीं अधिक घने आबाद महाप्रदेश एशिया को अपनी शारीरिक बीमारियों का इलाज करने के लिए, अपनी भीषण गरमी को ठण्डक

देने के लिए, अपने मरुस्थलों को पानी पहुंचाने के लिए, अपनी दुनिया को कम करने के लिए, अपने छिपे हुए खज़ानों को खोजने के लिए, अपने नंगेपन को ढांपने के लिए तथा पर्याप्त चावल गेहूं और दूध पैदा करने के लिए विज्ञान की सहायता की आवश्यकता है ताकि प्रतिवर्ष करोड़ों व्यक्ति भूखों न मरें।

इसी प्रकार अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका भी विज्ञान के जादू के डण्डे की प्रतीक्षा में है।

किसी भी पद्धति की अपेक्षा ये वस्तुएं अधिक आवश्यक हैं।

मानवीय प्रयत्नों का उद्देश्य पूंजीवाद या समाजवाद या साम्यवाद (कम्युनिज्म) की स्थापना नहीं। यह उद्देश्य मनुष्य को और अधिक सुख पहुंचाना होना चाहिए। यदि यह सुख विशुद्ध पूंजीवाद के स्थान पर किसी दूसरी पद्धति के अन्तर्गत प्राप्त हो सके तो कोई भी व्यक्ति जो कि लोगों में दिलचस्पी रखता है और जिसकी दिलचस्पी कोरी किसी पद्धति या किसी वाद में नहीं, कैसे इस सम्बन्ध में आपत्ति उठा सकता है।

पूंजीवाद सफलता प्राप्त कर चुका। किन्तु इसके साथ ही पूंजीवाद असफल भी रहा है। इसके झण्डे के नीचे पूरे-के-पूरे महाप्रदेश बंजर रह गए हैं। अनेक देश अपने ही खून से स्नान कर चुके हैं और धनी-से-धनी राष्ट्रों को भी समय-समय पर होने वाली मन्दी, मुद्रा की दर में कमी, बेकारी और संकट के कारण पीड़ा पहुंची है। कुछ लोग पूंजीवाद को इस तरह लेते हैं जैसे यह कोई आध्यात्मिक धर्म हो। किन्तु इसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं जो परिवर्तित न हो सके। ऐसी वस्तु तो और भी कम है जिसे अत्यन्त पवित्र समझने के कारण विरोध न किया जा सके।

लक्ष्य मनुष्य है, पद्धति नहीं; लक्ष्य स्वतन्त्रता है 'स्वतन्त्र' राष्ट्र नहीं, जो कि वास्तव में 'स्वतन्त्र' नहीं होते।

पुरानी दुनिया का पुरानी पद्धति में विश्वास नहीं रहा। यूरोप का

एशिया किसी नई वस्तु की खोज कर रहे है, जिसमे उन्हे विश्वास हो तथा जो उन्हे फिर से आत्म-विश्वास प्रदान कर सके।

पीडित राष्ट्र प्रश्नो, सदेह एव भ्रमो से परिपूर्ण होते हैं। इस प्रकार की अवस्था तानाशाही को पैदा कर सकती है। किन्तु सबसे बडी बात यह है कि इस अवस्था मे प्रयोग व परीक्षण किये जा सकते हैं और लोगो को बदला जा सकता है, क्योंकि लोग तो केवल अपने कष्ट और कटु-स्मृतिया ही खो सकते हैं। अनुदार विचार रखने वालो से आश्चर्य पूर्वक पूछा जाता है—"क्या आप इस भीषण भूतकाल को बनाए रखना ही चाहते है?"

आप कितने अनुदार हैं, यह बात प्राय या तो एस बात पर निर्भर है कि भूतकाल आपके लिए कितना सुखद रहा है या इस पर कि आप अभागे लोगो से कितने दूर है, या फिर यह बात आपकी कल्पना-शक्ति पर निर्भर है, अर्थात् आप मानवता के उज्ज्वल भविष्य को अपनी कल्पना की आँखो से देख सकते है या नही। प्रत्येक युग के निराशावादी अनुदार व्यक्तियो को इस बात का पूर्ण निश्चय होता है कि वर्तमान जब तक कि भूत नही बन जाता, तब तक उससे अधिक अच्छी कोई वस्तु नही हो सकती। इसके विपरीत सुधारक लोग आशावादी होते हैं। वे ऐसा अनुभव करते है कि हम वर्तमान को अधिक अच्छा बना सकते हैं।

बीसवी शताब्दी के विचारो पर प्रभुत्व रखने वाले तीन प्रतिस्पर्द्धी सामाजिक दार्शनिक विचार है, १८८० से १६०७ तक चली आ रही अपरिवर्तित पूजीवादी अनुदारता, समाजवाद द्वारा सशोधित पूजीवाद तथा कम्युनिज्म।

अनेक व्यक्ति, जोकि अपरिवर्तित पूजीवाद का कोरा मौखिक समर्थन करते है, अपने व्यक्तिगत व्यापार मे सरकारी सहायता से लाभ उठा चुके है। पूंजीवाद के प्राचीन स्वरूप के कुछ दृढ समर्थक आर्थिक मामलों में सरकार को घसीटने के साधन बन चुके हैं। स्वतन्त्र उद्योगों का प्रत्येक पैरोकार अपने लिए सरकारी संरक्षण प्राप्त करता है।

ऐसी दशा में अब प्रश्न यह नहीं रहा कि सरकार व्यापार में हाथ बटावे या नहीं। वह तो व्यापार में प्रविष्ट हो ही चुकी। प्रश्न यह है कि सरकार व्यापार में कितनी सीमा तक प्रवेश करे।

अधिकांश प्रजातन्त्रीय देशों में इस समस्या पर कि आर्थिक विषयों में किस सीमा तक सरकार हिस्सा ले विचार किया जा रहा है। इस समस्या का बुद्धिमत्ता पूर्ण और समयोचित उत्तर प्रजातन्त्र के जीवित बच रहने और फलने-फूलने की गारण्टी बन जायगा। क्योंकि सरकारी आर्थिक हलचलों की सीमा द्वारा ही इस बात का निश्चय हो सकेगा कि कितनी शक्ति राज्य के हाथ में और कितनी शक्ति व्यक्तियों के हाथ में रहेगी। यही स्वतन्त्रता की समस्या की मूल-वस्तु है।

सीमित परिवर्तनों से सन्तुष्ट होने वाले कुछ लोग सरकार को, नियम के अन्तर्गत लाने वाली शक्ति की भूमिका में या पञ्च-शक्ति के रूप में, या "उपहार बांटने वाले नायक के रूप में" अथवा सड़कों और पुलों जैसे सर्वसाधारण की सेवा के कामों में पैसा लगाने वाले धनिक के रूप में देखते हैं। दूसरे लोग इससे कुछ आगे बढ़ जाते हैं। उनकी सिफारिश है कि सरकार उद्योगों को अपने स्वामित्व में करके उन्हें चलावे। कौन-कौन से उद्योग हों? कितने उद्योग हों? यह प्रश्न विवादास्पद बना हुआ है। सार्वजनिक उपयोग के कार्यों, सड़कों, कोयले, लोहे जैसे भारी उद्योगों—सब के ही पैरोकार हैं।

इन प्रश्नों का हल केवल शब्दों से खेलने वाले सिद्धान्तवादियों द्वारा नहीं हो सकेगा, अपितु प्रत्येक देश की राजनैतिक और आर्थिक प्रतिस्पर्द्धी शक्तियों के आपसी सम्बन्ध द्वारा किया जा सकेगा। यदि कोई सामान्य बात कही जा सके तो कहेंगे कि शेष बचे हुए प्रजातन्त्रों में पूंजीवाद की पिछली सफलता या असफलता के बारे में जनता की भावना को यह निर्णय व्यक्त करेगा।

अमरीका जैसे सम्पन्न देश में भी १८ मार्च १९४७ को प्रभावशाली सेनेटर रोबर्ट ए० टैफ्ट ने, जिन्हें कि सामान्यतः समाजवादी नहीं

समझा जाता, घोषणा की थी—"व्यक्तिगत उद्योगो ने सबसे कम आमदनी के दलो के लिए आवश्यक मकान अभी भी मुहैया नही किये।" यह बात राष्ट्रीय गृह-सस्था के १९४५ के निरीक्षण से स्पष्ट है। इसमे बताया गया है कि अमरीका के १६ प्रतिशत से भी अधिक निजी मकानो मे पानी का प्रबन्ध नही, दो तिहाई से अधिक मकानो मे निजी स्नानागार नही, दो तिहाई के लगभग मकानो मे अन्दर हाथ-मुह धोने का भी प्रबन्ध नही और प्राय दो तिहाई मकानो मे खतरनाक या अपर्याप्त गरमी पहुचाने का प्रबन्ध है।

व्यक्तिगत उद्योग लाभ के उद्देश्य से मकानो का निर्माण कराते हैं। जहा लाभ कम होता है, जैसा कि कम आमदनी वाले दलो के मकान बनाने मे होना आवश्यक है, ऐसे कार्यों मे व्यक्तिगत उद्योगो को अधिक दिलचस्पी नहीं होती। लोगो के स्वास्थ्य और सुख को धक्का पहुचता है, इसलिए सेनेटर टैफ्ट ने इस बात पर बल दिया कि कम खर्चीले आश्रम-स्थानो को मुहैया करना सरकार की एक जरूरी जिम्मेवारी है।

गरीबो के लिए, जिन्हे मकानो की बहुत अधिक आवश्यकता है, मकान तैयार करवाने के कार्य मे यदि सरकार औद्योगिको की आर्थिक सहायता करे, तब भी यह सभव है कि उन्हे यह कार्य दिलचस्पी-रहित प्रतीत हो और तब सरकार को इन मकानो का सभवत स्वय निर्माण करना पडे। यदि ऐसा हुआ तो यह समाजवाद ही हुआ।

जो लोग पीडित है उनकी ओर अधिक ध्यान देने से आर्थिक हल-चलो मे सरकारी भाग बढ जायगा। फिर भी, सामान्यत अमरीका में, पूजीवादी पद्धति को उखाड फेकने या इसमे बुनियादी परिवर्त्तन कर देने का दबाव इतना कमजोर इसलिए है, क्योंकि अभी तक पूजी-वादी पद्धति वहाँ दृढ है और बहुत-से लोगो के लाभ की नींव पर यह चल रही है। व्यापारिक मन्दी होने पर यह दबाव तीव्र हो जाता है। सदैव ही यह दबाव ज़ोर का उन स्थानो मे अधिक रहता है, जहाँ कि दल इस सम्बन्ध मे जानकारी रखते हैं कि वे एक आर्थिक या जातीय

या किसी अन्य अन्याय के शिकार बने हुए हैं। कभी-कभी व्यक्तिगत बातें भी इस दबाव का कारण होती हैं।

श्रीमती क्लेयर ल्यूस का कथन है कि कैथोलिक चर्च में प्रविष्ट होने से पूर्व मैंने मस्तिष्क-सम्बन्धी बीमारियों की मनोवैज्ञानिक उपचारिका तथा बाद में कम्युनिस्ट बनने की चेष्टा की। वे लिखती हैं—"कम्युनिस्टों के प्रति आकर्षण का कारण कम्युनिज्म का धार्मिक ढांचा था, जिसने मुझे अपनी ओर खींचा। कम्युनिज्म का एक पूर्ण, स्वतन्त्रता के ऊपर अधिकार रखने वाला, धार्मिक ढांचा है। इसी प्रकार हैं बड आइन पहले कम्युनिस्ट बने और बाद में इन्होंने कैथोलिकवाद को स्वीकार कर लिया। लुइस बुडेंज ने कैथोलिक गिरजे को छोड़ा, कम्युनिस्ट 'दैनिक मजदूर' के सम्पादक बन गए, किन्तु अब फिर अपने पुराने गिरजे में पहुंच गए हैं। ऐसे ही अन्य व्यक्ति या तो हॉलीवुड के व्यक्तिगत तालाबों के निकट बैठ स्टालिन के पवित्र उपदेशों को पढ़ते हैं या कॉनेक्टीकट की जागीरों में बैठे क्रांति की ओर नारा लगाते हैं। वे सम्पत्ति की उस कमी की पूर्ति चाहते हैं, जो कि उन्हें सुख तो नहीं पहुंचाती, किन्तु फिर भी जिसे वे छोड़ना नहीं चाहते। इसीलिए वे दूसरों के कष्ट सहन करने की इच्छा से गरीब मजदूरों के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। फिर भी वे इस बात का पहले से पता कर लेते हैं कि वे स्थान सुरक्षित और आराम देने वाला है या नहीं। ऐसे लोग जिस भांति रूस को—जिसको वे जानते भी नहीं—स्वर्ग बना देते हैं, वह सर्वथा अस्वाभाविक है।

मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक या भावुकता-भरे उद्देश्य या जातीय-बन्धन (यह बात भी कि वे रूस के सम्बन्ध और अनवरत गुणगान करते हैं) कुछ व्यक्तियों को एकतन्त्रवादी कम्युनिज्म की ओर अग्रसर करते हैं। उन्नतया विकसित नैतिक भावना या विश्वास, जिनकी नींव इतिहास, विज्ञान या समाज-शास्त्र पर रखी गई हो, पूंजीवाद को मानवता संगठन का अन्तिम रूप न घोषित कर कुछ अन्य व्यक्तियों को प्रजातन्त्रीय समाज-

वाद की ओर अग्रसर कर सकता है। किन्तु आज, जब कि अमरीका आशा और समृद्धि प्रदान कर रहा है, तब इन दोनो मे से किसी भी विचार को वहा व्यापक समर्थन प्राप्त नही हो रहा।

अमरीका से कम समृद्ध राष्ट्रो मे, पूजीपति-विरोधी बल अधिकाधिक शक्ति अपनाता जा रहा है।

कुछ अपवादो को छोडे यूरोप और एशिया के समस्त तथा कुछ दक्षिण अमेरिका के भी प्रजातन्त्रीय राष्ट्र, आर्थिक प्रश्नो के सम्बन्ध मे राज्य द्वारा योग की दिशा मे तेजी से अग्रसर हो रहे है। स्वीडन इगलैड, फ्रास, इटली आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैड आस्ट्रीया और पश्चिमी जर्मनी ने बडे-बडे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर लिया। जिन-जिन देशों मे सरकारो ने उद्योगो को अपने हाथ मे अभी नही लिया, वहा या तो इन्हे हाथ मे लेने की तैयारियॉ हो रही हैं या कठोर नियन्त्रण लागू किये जा रहे हैं या राज्य की देख-रेख मे व्यक्तिगत व्यापार को रखा जा रहा है। व्यक्तिगत पूंजीवाद, युद्ध के बाद से जिसका प्रभाव कम हो गया है, अधिकाश मे सरकार के हाथो मे आता जा रहा है। और सार्वजनिक अविश्वास को व्यक्त करती हुई सरकारे व्यक्तिगत उद्योगो पर अधिकाधिक कडी निगाह रख रही है और अपने बन्धन दृढ करती चली जा रही हैं।

प्रजातन्त्रीय देशो मे पूजीवाद राजनैतिक समर्थन खोता जा रहा है। ११ मई १९४७ को ग्रेट ब्रिटेन के अनुदार दल ने घोषणा की है कि यदि वह फिर पदारूढ हो सकी, तब वह बैंक आफ इगलैड या कोयले की खानो या रेल-सडको को फिर से व्यक्तिगत सम्पत्ति बनाने की चेष्टा नही करेगी। फ्रास मे कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट दल पूंजीपतियो के विरोधी तो हैं ही, किन्तु कैथोलिक दल मे भी एक बडा, शक्तिशाली पूंजीपति-विरोधी भाग है। देश के ये तीनो ही सबसे बडे दल हैं। यहा तक कि अत्यन्त दक्षिणपक्षीय जनरल चार्ल्स डिगौल ने भी २० अप्रैल १९४७ को घोषणा की कि वे कोयले बिजली और बीमे के उद्योगो के

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। इटली में भी ऐसी ही स्थिति है। जर्मन ईसाई-समाजवादी-यूनियन, जिसमें कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट दोनों ही शामिल हैं, कुछ उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। केवल एक छोटा-सा जर्मन-दल पूर्णतया पूंजीवाद का समर्थक है। चीनी राष्ट्रीय सरकार एक महान कपड़ा-निर्माण-सिण्डीकेट का संचालन करती है। यह सिण्डीकेट दूसरे व्यक्तिगत उत्पादकों का मुकाबला करती है। जापान के समाजवादी दल में चुनने वाली जनता के एक बहुत बड़े भाग की दिलचस्पी है। इण्डोनेशियन प्रजातन्त्र के, जिसकी आबादी ७॥ करोड़ है अर्थमन्त्री श्री ए० के० गनी ने जावा और सुमात्रा को "शुद्ध-समाजवादी" बनाने के लिए दस-वर्षीय योजना की घोषणा कर दी है। भारत की नई केन्द्रीय सरकार ने भारत के रिजर्व-बैंक का राष्ट्रीयकरण कर लिया है और बंगाल व बिहार के कोयला खनिकों के लिए दस हजार मकान बनवा रही है। भारत के दिन-प्रतिदिन बढ़ रहे समाजवादी दल के नेता जयप्रकाशनारायण हैं। जवाहरलाल नेहरू तथा जे० आर० डी० टाटा के समान बड़े-बड़े पूंजीपति और अन्य लोग भी इन्हें अपने देश का होने वाला नेता समझते हैं। भारत के समाजवादी, जो सचमुच है, भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच चल रहे विरोध का हल ढूंढ निकालने में सबसे अधिक सम्पन्न सिद्ध हो सकते हैं क्योंकि वे किसी भी धर्म से सम्बन्ध न रखने वाले विशुद्ध दल के सदस्य हैं। फिलस्तीन में संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा यहूदी-दल यहूदी-मजदूर-दल है। समस्त यूरोप में बहुत देर से काफी बड़ी समाजवादी संस्थाओं का अस्तित्व विद्यमान है। इनमें से सबसे अधिक महत्वपूर्ण ब्रिटिश मजदूर-दल है।

पूंजीवाद अपने बुद्धिजीवी लोगों को खोता जा रहा है। प्रायः यूरोप और एशिया की विधायक बुद्धिजीवी शक्तियां या तो सामाजिक या समाजवादी या कम्युनिस्ट। इन दोनों महाप्रदेशों में व्यक्तिगत उद्योगों

के लिए बीड़ा उठाने वालो की सूची मे कोई भूला-भटका विचारक या पारखी ही सम्मिलित होता है।

यूरोप के समस्त सोवियत् प्रभात-क्षेत्र मे अर्थात् फिनलैंड, पोलैण्ड, रूस-अधिकृत जर्मनी, रूस-अधिकृत आस्ट्रिया, रूमानिया, हगरी, जैकोस्लोवेकिया, बल्गेरिया, युगोस्लेवेया और अलबानिया मे अधिकाश अर्थ-नीतियो का रूसी और कम्युनिस्ट दबाव मे राष्ट्रीयकरण हो चुका। इस विस्तृत क्षेत्र मे उत्पादन और व्यापार का मुख्य भाग मास्को के ट्रस्टो और कार्टेलो (सम्मिलित कम्पनिया) के नियन्त्रण मे है।

इस प्रकार सामाजिक इन्द्रधनुष के रगो का प्रारभ पूजीवादी अमरीका से होता है, जहा बहुत थोडा समाजवाद है। इसके अनन्तर यूरोप और एशिया के प्रजातन्त्रीय भागो की बारी आती है, जहा समाजवाद शीघ्रतापूर्वक पूंजीवाद के साथ सम्मिश्रित होता जा रहा है। इसके बाद सोवियत् प्रभाव के क्षेत्र आते है, जहा प्रतिमास प्रजातन्त्र कम हो रहा है और समाजवाद बढ रहा है। सबसे अन्त मे अप्रजातन्त्रीय सोवियत् यूनियन है, जहा व्यक्तिगत पूजीवाद का अस्तित्व ही नही है।

युद्धोपरान्त के नये ससार का यह चित्र है। युद्ध ने सर्वत्र ही जनता के झुकाव की गति को पूंजीवाद से विभिन्न मार्गों की ओर और भी कर दिया है।

दसवां अध्याय

वर्तमान अवस्थाओं के अनुकूल कैसे बना जाय ?

मानवता शक्ति-प्राप्ति की एक-एक पागल दौड़ का तमाशा देख रही है। बड़ा राष्ट्र छोटे राष्ट्र को हड़पे जा रहा है, व्यापारिक कम्पनी छोटी कम्पनी को निगले चली जा रही है। ट्रेड-यूनियनें, उद्योगों और सरकार पर डण्डा ताने खड़ी हैं। प्रत्येक पक्ष अपने कार्यों का औचित्य अपने विरोधियों के वैसे ही तथा इससे उलटे कार्यों की ओर संकेत कर सिद्ध करने का यत्न कर रहा है। प्रत्येक, कम-से-कम आंशिक रूप में, ठीक है।

आधुनिक काल में उत्पादन का काल्पनिक विस्तार ही शक्ति की समस्या के मूल में है। एक अर्थ-नीति जितनी ही अधिक सम्पन्न होगी उतनी ही अधिक शक्ति उन राजनैतिक या आर्थिक दलों में होगी जो इस नीति के संचालक या स्वामी हैं। उदाहरण के रूप में, स्पष्टतया अमरीका की समस्त राजनैतिक और आर्थिक शक्ति का जोड़ आज उससे बहुत अधिक है जितना कि १८८० में था, क्योंकि यह सीधी-सी बात है कि आज वस्तुओं की अधिक पैदावार, अधिक खरीद, अधिक पैसा, प्रत्येक वस्तु की अधिकता है।

इस स्थिति को सुलझाने के लिए गांधी ने जीवन को सादा और पूर्वावस्था में लाने का सुझाव पेश किया, जहां कि अपना शासन स्वयं करने वाले गांवों में अनेकों घरेलू उद्योग हों। किन्तु इस मामले में भारत भी उनके पीछे चलने को तैयार नहीं। ऐसी अवस्था में यह बात तो निश्चित ही है कि संसार उनका अनुकरण नहीं करेगा।

प्रश्न यह है कि क्या हमारी उलझन-भरी औद्योगिक सभ्यता में शक्ति

को लगाम लगाने के लिए, या शक्ति के कुल परिमाण मे से कुछ कम कर देने के लिए, कोई रचनात्मक ढङ्ग खोजा जा सकता है ? जब तक कि ऐसे कोई उपाय नही ढू ढे जायगे, तब तक वैज्ञानिक खोजो और यन्त्रों-सम्बन्धी आविष्कार, जो कि हमारे लिए वरदान होने चाहिए, मानवता को गुलाम बनाने वाले या उसका विनाश करने वाले साधन बन जायगे।

कुछ लोगो का तर्क है कि यदि शक्ति और पूंजी पर एकाधिकार करना उद्देश्य हो, तो व्यक्तिगत लोगो पर यह भार न छोडकर जनता की एजेण्ट सरकार के हाथ मे इसे रखना अधिक सुरक्षित होगा। इसीलिए ये लोग इस बात का समर्थन करते है कि समस्त शक्ति पूजीपतियो से लेकर सरकारो को दे देनी चाहिए। किन्तु दोनो ही उपायो से स्वतन्त्रता के लिए जो सकट पैदा हो गया है, उसकी समाप्ति या उसमे कमी होती प्रतीत नही होती, क्योकि एक प्रजातन्त्र मे, जब कि पूजीपतियो को, राज्य द्वारा नियन्त्रित और यूनियनो द्वारा डाटा-डपटा जा सकता है, एक ऐसी सरकार जो कि समस्त पूंजी की स्वामिनी हो, इतनी स्वेच्छाचारिणी होगी जिसका कोई अवरोध नही कर सकता।

जितना अधिक एक सरकार करती है उतनी ही अधिक शक्ति इसे प्राप्त हो जाती है, जितनी ही अधिक शक्ति उसे प्राप्त होती है उतनी ही अधिक व्यक्ति पर इसकी शक्ति बढती जाती है। रूस मे राज्य ही सब कुछ करता है। यह एक-मात्र पूजीपति और प्रबन्धक है। इससे ही शोषण, दमन, तानाशाही और साम्राज्यवाद प्रवाहित होते है। मार्क्सवादी समझते थे कि केवल मात्र व्यक्तिगत-पूजीपति की सम्पत्ति राज्य को सौंप देने से दुनिया स्वर्ग बन जायगी। किन्तु एक राज्य समस्त वास्तविक सम्पत्ति का स्वामी हो जाने के बाद आकार और निर्दयता दोनो मे दानव बन जाता है। ऐसी अवस्था मे आखिर मनुष्य को लाभ क्या पहुचा ?

स्पष्टतया तानाशाही की बदल गान्धी की चरखे की अर्थ-नीति नही। न यह बदल ऐसा कोई प्रबन्ध हो सकता है, जिसमे आर्थिक

प्रश्नों के सम्बन्ध में सरकार कुछ भी अधिकार न रखती हो। इसका परिणाम तो उथल-पुथल और संकट होगा।

असली बुराई तो शक्ति पर एक-छत्र अधिकार है चाहे वह सरकार द्वारा किया जाय या व्यक्तिगत पूँजीपति द्वारा। दोनों ही मनुष्य को कल निर्मित निर्जीव प्राणी बनाने का यत्न करते हैं। शक्ति पर एक-छत्र अधिकार अप्रजातन्त्रीय वस्तु है।

इलाज तो शक्ति का बाँटकर इधर फैला देना या इसका अधिक समान बटवारा है।

पिछले कुछ वर्षों में, अनेकों देशों के समान, आस्ट्रेलिया में भी बड़ी कम्पनियों द्वारा छोटी कम्पनियों के हड़प जाने का तमाशा हुआ है। झुकाव और भी कम तथा और भी बड़ी-बड़ी कम्पनियों की ओर है। फलस्वरूप आस्ट्रेलिया का मजदूर-दल सरकार से व्यापार में हिस्सा बटाने की माँग कर रहा है। मजदूरपक्षीय आस्ट्रेलियन प्रधान-मन्त्री का कथन है—"मेरी राय में, दोनों (सरकार और पूँजीपति) ही के लिए देश में काफी स्थान है।

स्वतन्त्र-कार्य-पद्धति के अन्तर्गत व्यक्तिगत-उद्योग कभी-कभी कुछ कम्पनियों के रूप में इतने अधिक केन्द्रित हो जाते हैं कि प्रतियोगिता की ही समाप्ति हो जाती है। जब कि सरकारी और व्यक्तिगत पूँजी दोनों ही उद्योग में लगी हुई हों, तब प्रतियोगिता चालू रह सकती है।

ब्रिटिश सरकार की वर्तमान राष्ट्रीयकरण की योजना में कोयला-उद्योग, रेल और सड़क यातायात उद्योग, गैस, बिजली तथा तार व बेतार सम्वाद के उद्योग सम्मिलित हैं। निःसन्देह ये सब जन-उपयोग के उद्योग हैं। इनमें कुल मजदूर आबादी के लगभग १० प्रतिशत व्यक्ति लगे हुए हैं। शेष ९० प्रतिशत अब भी व्यक्तिगत उद्योगों में ही काम करेंगे।

यह मिली-जुली अर्थ-नीति हुई। अनेकों प्रजातन्त्रों के लिए यह

एक नया नमूना बन सकती है। यह मिली-जुली अर्थनीति व्यक्तिगत पूंजीवाद और सरकारी पूंजीवाद का सम्मिश्रण है।

परमाणु-बम अमरीकन सरकार और व्यक्तिगत उद्योग के बीच एक घनिष्ठ हिस्सेदारी से तैयार किये गए थे। परमाणु-शक्ति को नागरिक कार्यों के उपयोग में लाने के उपायों को खोजने के लिए जो प्रयोग किये जा रहे हैं, वे भी इसी प्रकार फैडरल सरकार द्वारा व्यापारिक संस्थाओं की सहायता से किये जा रहे हैं। परमाणु शक्ति फौजी प्रश्नों के इतने निकट और संसार की राजनीति की दृष्टि से इतनी अधिक परीक्षणात्मक है कि इसके नियन्त्रण में सरकार को एक महत्त्वपूर्ण भाग लेना आवश्यक है। इसीलिए भविष्य में किसी दिन उद्योगों के लिए परमाणु-शक्ति का मुख्य स्रोत, वास्तविकता तो यह है कि एक-मात्र स्रोत, सरकार ही हो सकती है। सम्भवतः परमाणु-शक्ति उत्पादन का समस्त रूप ही परिवर्तित कर दे, उदाहरण के रूप में कोयले को खानों से निकालने के उद्योग की ही यह समाप्ति कर दे।

समाजवादी रूपमें परमाणु-शक्ति को तैयार करने वाली सरकार, यह शक्ति पूंजीवादी व्यक्तिगत कारखानों को प्रदान करेगी। यह मिली-जुली अर्थ-नीति होगी। आधुनिक विज्ञान ने पूंजीवाद को वह स्वरूप प्रदान किया है जो आज इसका है। और भी अधिक आधुनिक विज्ञान पूंजीवाद को सर्वथा बदल भी सकता है।

एक मिली-जुली अर्थात् मिश्रित अर्थ-नीति में उत्पादन के साधनों का स्वामित्व और कार्य-भार केवल फैडरल सरकार और व्यक्तिगत संस्थाओं के बीच ही नहीं बंटता। यह स्वामित्व और कार्य चलाने का भार फैडरल सरकार, राज्य या प्रान्तीय सरकारों, जिला-सरकारों, शहर सरकारों, को-आपरेटिवों, व्यक्तिगत कम्पनियों और व्यक्तियों, इन सब के बीच बंट जाता है।

आर्थिक शक्ति का इतना व्यापक बटवारा राजनैतिक तानाशाही को और बहुत-से लोगों में कार्य की पहल करने की शक्ति और कार्य करने

की क्षमता को उत्पन्न करेगा। दूसरे शब्दों में यह राजनैतिक प्रजातन्त्र में रक्षित आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना करेगा।

इस सबके अतिरिक्त सबसे बड़ा लाभ मिश्रित अर्थ-नीति का यह होगा कि सरकार के मेल में व्यक्तिगत व्यापार द्वारा स्वेच्छा से योजनाएं तैयार की जायेंगी। प्रत्येक परिवार, प्रत्येक स्कूल और प्रत्येक कारखाने का मालिक योजनाएं बनाता है। फिर भी व्यापारियों द्वारा आपस में मिल ऐसी योजनाएं बनाने की आवश्यकता है। पहले के समाज-शास्त्री वैज्ञानिक यह विश्वास रखते थे कि अर्थ-नीति की विभिन्न शाखाओं के आपसी सम्बन्ध निश्चित करने के लिए किन्हीं नियमों या योजनाओं की आवश्यकता नहीं होती। वे कीमतें, मांग और उसकी पूर्ति द्वारा स्वयमेव ही अपने-आपको एक क्रम में बांध लेते हैं। किन्तु यदि कोई व्यक्ति उलट-पुलट, दिवालियेपनों, ऊंची कीमतों के कारण की जाने वाली हड़तालों और अनुपात में कम स्पष्ट जमी चीजों की ओर दृष्टि करे, तो वह अनुभव करेगा कि स्वयमेव चलनेवाला क्रम बहुत महंगा पड़ता है और कई बार यह क्रम चलता भी नहीं।

यदि व्यक्तिगत उद्योग राष्ट्रीय पैमाने पर योजना बनाने का यत्न करें, तो यह सम्भव है कि वे असफल रहें या उन पर यह अभियोग लगाया जाय कि वे व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाकर एकाधिकार के लिए संगठन कर रहे हैं।

आज कल से आयोजन या नियन्त्रण का कार्य सरकारें कर रही हैं। वे कीमतों को कम रखने की, टैक्सों द्वारा आमदनी को बांट देने की, वेतनों को उचित अनुपात में लाने की, नौकरियों को बढ़ाने आदि की कोशिशें करती हैं। किन्तु प्रायः यह कार्य संकट उपस्थित हो जाने के बाद ऊट-पटांग ढंग से किया जाता है। संकटों का पहले से ही ज्ञान आवश्यक है और कम-से-कम आंशिक रूप से ही सही, उनको रोकने के लिए पहले से ही रोक-थाम की आवश्यकता है।

मिली-जुली अर्थ-नीति की योजना का कार्य यह ही होगा।

इस योजना का अर्थ यह होगा कि एक राष्ट्र के व्यापारिक जीवन के असख्य भागो मे नौकरशाही नियन्त्रण कम और स्वयमेव बने क्रम अधिक स्थान प्राप्त करे।

वर्तमान स्थिति मे, पूजीवाद अन्ध-परीक्षा और भीषण भूलो से भरे अवैज्ञानिक उपायो से काम लेता हुआ, बहुत अधिक उथल-पुथल और गडबड मचा देने वाला कार्य कर रहा है। हम अगले सप्ताह के मौसम के बारे मे उससे कही अधिक जानकारी रखते हैं, जितनी कि हमे अगले सप्ताह की व्यापारिक दरो के बारे मे होती है। व्यापार की अपेक्षा तो राजनीति भी कही अधिक एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत है।

मिश्रित या मिली-जुली अर्थ-नीति न केवल व्यवस्था की स्थापना करेगी, अपितु यह एक नई प्रेरणा को पैदा कर देगी। मजदूर लोगों की कार्य करने की चेष्टा मे भी यह अभिवृद्धि कर देगी। अधिक नौकरिया मिलने के या पूरी-पूरी नौकरियो के मिलने के दिनों, जब कि मजदूरो को काम पर लग जाने का निश्चय रहता है, मजदूर अपने प्रयत्नो मे ढील करने की ओर भी झुक सकते हैं। यह सभव है कि विश्व एक ऐसे समय मे प्रविष्ट हो रहा है, जिसमे बहुत अधिक नौकरिया है। यूरोपियन महाप्रदेश और ग्रेट बृटेन मे मजदूरो की कमी को अनुभव किया जा रहा है।

१३४८-४६ मे जो भीषण काला प्लेग इग्लैंड में फैला, उसने इस द्वीप की कुल आबादी मे से आधे या एक तिहाई के बीच लोगो को खतम कर दिया। इसके फलस्वरूप मजदूरो की जो कमी हुई, उसने किसान गुलामो को जमीन से छुडाने मे सहायता पहुचाई और यह उन्हे शहरो मे खीच लाई। यहा इन लोगो ने बृटिश पूजीवाद और उद्योगो के विकास को सम्भव बनाया।

इसी प्रकार ग्रेट बृटेन की वर्तमान मजदूरो की कमी इस बात की आवश्यकता को बताती है कि बृटिश उद्योगो के उससे कही अधिक यान्त्रिक और बुद्धिवादी बनाने की आवश्यकता है, जितना कि व्यक्तिगत

प्रयत्नों में उन्हें यान्त्रिक और बुद्धिवादी आज तक बनाया गया है । इस प्रकार मजदूरों की कमी इंग्लैंड को समाजवाद की ओर ले जाने वाली एक शक्ति है ।

यदि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की गारण्टी हो और नौकरशाही बहुत सम्पन्न और ठाठदार न हो तो अधिक नौकरियों वाली होने के काल में व्यक्तिगत कार्यों की अपेक्षा राज्य द्वारा काम का किया जाना अधिक उत्पादक होगा, क्योंकि तब मजदूर के मन में यह भावना काम करेगी कि वह अपने लिए, अपनी जात-बिरादरी के लिए, काम कर रहा है ।

मिश्रित अर्थ-नीति, अन्ततोगत्वा आर्थिक प्रजातन्त्र की ओर ले जाने वाली सिद्ध होगी ।

एक राजनैतिक प्रजातन्त्र में, शासन-प्रबन्ध चलाने वाली श्रेणी कानून-निर्माण करने वाला विभाग और न्याय करने वाली शाखा तीनों ही एक दूसरे की शक्ति का सतुलन करते हैं । यह विरोध स्वतन्त्रता की एक प्रकार से गारण्टी होता है । वर्तमान आर्थिक विकास में पूंजी-पतियों पर नियन्त्रण रखने वाला सरकारी कानून, ट्रेड यूनियनें और ट्रेड यूनियनों द्वारा पूंजीपतियों का विरोध । इनके अपने गुण हैं । किन्तु आर्थिक अवरोध और सतुलन सम्भवतः अधिक स्वच्छन्दता और सुग-मतापूर्वक कार्य कर सकेंगे, यदि उत्पादन और बटवारे में सरकार व्यक्तिगत पूंजीपति और को-आपरेटिवों के रूप में संगठित व्यक्तियों के समूह, आपस में हिस्सा बांट कर लें ।

शक्ति की समस्या को समानता प्रदान करने के लिए,एक छत्र अधि-कार की समाप्ति और अधिक प्रतियोगिताको चालू करने वाला मिश्रित-अर्थ-नीति का उपाय, एक नुस्खा है । यह ही पर्याप्त नहीं । किसी दूसरे नुस्खे की भी खोज की जानी आवश्यक है, जिससे कि किसी भी व्यक्ति को प्राप्त कुल शक्ति को कम किया जा सके । इस कार्य के करने की भी बहुत-सी सम्भावनाएं हैं ।

भारत में एक खून चूसने वाला साहूकार एक गरीब किसान को

एक बडी रकम वहुत अधिक सूद पर देता है । इसके अनन्तर, प्रायः मृत्यु पर्यन्त किसान सूदखोर का आर्थिक गुलाम बन जाता है। एक भूमि-बैंक या आपसी-सहायक ऋण-कमेटी, साहूकार की ऋण लेने वाले किसान पर जो शक्ति है, उसकी समाप्ति कर देंगे।

पासपोर्ट और उससे सम्बन्धित आज्ञा-पत्रों को मैत्रीपूर्ण देशो मे रद्द करके दूतावास के नौकरशाहो की वह शक्ति उनसे छीनी जा सकती है जिसे कि वे यात्रियो को देरी लगाने, बाधा पहुचाने और परेशान करने के लिए काम मे लाते है।

अन्यायपूर्ण दण्ड देने से प्रति वर्ष एक या छ या दस हब्शी ही नही मरते, अपितु वे लाखो हब्शियो को डराते-धमकाते है और उनकी कागजो मे लिखी स्वतन्त्रता को एक उपहास की वस्तु बना देते हैं। एक कानून-सम्मत शासन, गोरे वहशियो को हब्शियो पर जो शक्ति प्राप्त है, वह उनसे छीन लेगा।

योजना के अनुसार सन्तान पैदा करना माताओ को अपने जीवन स्वतन्त्रता पूर्वक बिताने मे सहायक होगा।

एक व्यापारी को, जो कि एक शहर के एक या दो समाचार-पत्रो और रेडियो-स्टेशन का स्वामी है, केवल-मात्र इसीलिए कि उसे उत्तराधिकार मे धन मिला है या इसलिए कि वह जूते सफलता पूर्वक वेचता है, हजारो लोगो के दिमागो पर अधिकार-प्राप्त हो जाता है। ऐसे स्थानों पर प्रतियोगिता की आवश्यकता होती है। जहाँ प्रतियोगिता असभव हो, वहाँ इन पत्रो व रेडियो-स्टेशनो के स्वामी मे अपनी विशिष्ट सामाजिक जिम्मेवारी की चेतना होनी चाहिए कि वह उचित रूप से प्रत्येक प्रश्न के हर पहलू को उपस्थित करे।

प्रत्येक परिवार के लिए अपनी मोटर रखने से कही अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु अपना मकान बनाना है। यदि प्रत्येक परिवार अपने ही मकान मे रहे या शहरी को-आपरेटिव मकानो मे से अपने लिए कमरे लेकर उनमें रहे, तो मकान-मालिक की बुराई करने की शक्ति कम हो जायगी।

इसी प्रकार शहर जिस भूमि पर बसाए जाएं उसका स्वामित्व ग नगर अपने हाथों में ले लेने से, शहरों का भी भला होगा।

वेतन की दरें, कार्य करने की स्थितियां, तार टेलीफोन, बाजार की कीमतें और अन्य एक-छत्र अधिकार या इसके समान दूसरे उद्योगों की जो कि वास्तव में सार्वजनिक उपयोग के कार्य हैं—दरों के निश्चित करने के लिए एक सभ्य कार्य-पद्धति की आवश्यकता है, ताकि ट्रेड यूनियन द्वारा राष्ट्र के जीवन का पक्षाघात करने से बचाया जा सके। इससे प्राप्त हुई शक्ति का जोर कम किया जा सकता है।

कृषि योग्य भूमि वायु के समान ही स्वतन्त्र होना चाहिए। उसे खरीदा और बेचा नहीं जाना चाहिए। परिवार और व्यक्तियों के बीच भूमि का बटवारा भूमि को उपयोग में लाने की उनकी शक्ति तथा सार्वजनिक भलाई की दृष्टि को सन्मुख रखकर किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति जितनी एकड़ भूमि पर कब्जा कर सकता है, यह बात कठोरता पूर्वक सीमित कर देनी चाहिए। इस प्रकार स्वयं उत्पादन न करने वाले वर्गों का उन स्त्री, पुरुषों और बच्चों पर से शक्ति समाप्त हो जायगी, जो कि संसार के लिए भोजन और अन्य औद्योगिक फसल तैयार करते हैं।

पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा से युक्त मजदूरियों का एक उच्च स्तर तथा बेकारी का बीमा, वेतन भोगियों और रोज़ी कमाने वालों का कार्य करने की स्थितियों के सम्बन्ध में सौदेबाज़ी करने के लिए अधिक उपयुक्त बना सकता है। फलस्वरूप नौकर रखने वाला का जहां तक सम्बन्ध है, उनसे उन्हें पहले से कहीं अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायगी।

राजनैतिक दलों की उस मशीन को, जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पदों के लिए उम्मीदवार व्यक्तियों का चुनाव करती है बहुत अधिक शक्ति प्राप्त हो जाती है। यह मशीन प्रजातन्त्र में बाधा पहुंचाती है। सर्व साधारण मतदाता द्वारा और अधिक राजनैतिक रोक ऐसी सब मशीनों पर रोक-थाम का काम देती है।

मतदाताओं या उम्मीदवारों पर लगाई गई सम्पत्ति-योग्यता या

चुनाव टैक्सो से बहुत अधिक शक्ति कुछ ही व्यक्तियो मे केन्द्रित हो जाती है। एक जागृत जनता द्वारा प्रजातन्त्र पर लगाई गई इन सीमाओं का उन्मूलन कर दिया जाता है।

एक खान खोदने वाली कम्पनी को; जो कि खान के पास बसे गाव के मकानो और दूकानो की स्वामी हो, उन व्यक्तियो पर जिन्हें यह काम में लगाती है बहुत अधिक शक्ति होती है। इसका भी इलाज हो सकता है।

जब कि शिक्षा एक खर्चीला विशिष्ट अधिकार हो, तब उन थोडे-से लोगो को, जो इसे प्राप्त कर सकते है, उन लोगो की अपेक्षा इससे कहीं अधिक लाभ होता है जो कि इसे प्राप्त नहीं कर सकते। इस शक्ति-लाभ को सबके लिए मुफ्त सार्वजनिक शिक्षा कम कर देती है।

इसी प्रकार सम्पत्ति की समानता आज के सम्पत्ति से मिलने वाले शक्ति-लाभ की समाप्ति कर देगी। अभी बहुत दिनो तक सम्पत्ति की समानता नहीं हो सकती। किन्तु व्यक्तियो का धीरे-धीरे समानता की ओर अग्रसर होना शक्ति की समस्या का हल हो जाने का प्रारम्भ होगा।

यदि सम्पत्ति समान हो भी जाय, शक्ति समान नही हो सकती। सदैव अधिकारी और साधारण लोग, उच्च अधिकारी और नीचे के अधिकारी रहेंगे ही। प्रत्येक का व्यवहार कैसा होगा, यह पर्याप्त कानूनों, अवरोधो और सतुलनो पर आशिक रूप मे निर्भर है। किन्तु तब भी अपवित्रता और शक्ति का दुरुपयोग सभव हो सकेंगे। इसलिए अतिम विश्लेषण के रूप मे हमे यह स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक बात व्यक्ति और जनता के नैतिक गुणो पर निर्भर है।

एक व्यक्ति जो कि डराने-धमकाने की कला मे चतुर हो जाने की इच्छा रखता है, अपनी बुरी चाह की पूर्ति के लिए राह खोज सकता है और परिवार, स्कूल, दफ्तर, फैक्टरी, सरकारी नौकरी सब ही स्थानो मे, ऐसा मार्ग मिल सकता है। उसके इलाज की आवश्यकता है। अधिक

अच्छा हो कि शीशे में अपना मुंह देखकर तथा उन लोगों के जीवन में प्रविष्ट होकर जिन्हें वह सताता है, अपना इलाज वह स्वयं करे। इसी प्रकार यदि रिश्वतखोरी, लूट, सम्बन्धियों के प्रति अनुचित पक्षपात, योग्यता का बलि चढ़ाकर किया गया पक्षपात तथा अन्य प्रकार की सार्वजनिक अनैतिकताओं की प्रथाओं और रीति-रिवाजों द्वारा रक्षा कर दिया जाय, तो भले ही चाहे कोई भी कानून पास क्यों न किये जाएं, जाति या राष्ट्र की हानि होती है।

सामाजिक बुराइयों से लड़ने के अतिरिक्त, नागरिकों में सम्मानित और कानूनी उपायों की पूर्ति, व्यक्ति द्वारा उनको अपने चरित्र में लागू करने और जाति द्वारा एक उच्च शिष्टाचार का आदर्श स्थापित करने के कार्य द्वारा होनी आवश्यक है।

पद्धति का भी महत्व होता है। एक तानाशाही में एक राजा भी बहुत आगे नहीं बढ़ सकता है। भलाई के प्रति व्यक्तिगत झुकाव को तानाशाही खत्म करने की चेष्टा करती है और प्रायः इस कार्य में सफल भी रहती है। तानाशाही का आतंक प्रत्येक व्यक्ति को बुराई के शासन के अनुरूप बना देता है।

इसके विपरीत एक प्रजातन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त छूट मिलती है, जिसके कारण उसके गुणों या अवगुणों को अपने प्रदर्शन के लिए एक बड़ी भूमिका प्राप्त हो जाती है।

ऐसा विचार किया जाता था कि व्यक्तिगत पूंजीवाद की समाप्ति के बाद स्वयमेव नैतिकता में सुधार हो जायगा। इस मान्यता के विरुद्ध सोवियत अनुभव एक तर्क है। सोवियत समाज प्रभावशाली रूप में अनैतिक है। १९३१ में प्रकाशित पी० रोमानोव द्वारा लिखित '[illegible] कलाकार' नामी सोवियत उपन्यास का एक पात्र कहता है—"नैतिकता, इस शब्द पर विचार करने के लिए मेरे पास समय नहीं। मैं व्यस्त हूं। मैं समाजवाद का निर्माण कर रहा हूं। किन्तु यदि मुझे नैतिकता और एक जोड़ी पाजामे के बीच चुनाव करना हो, तो मैं पाजामे का चुनाव

करूंगा।" वह केवल-मात्र इसीलिए पाजामेका चुनाव नही करेगा क्योकि पाजामे की रसद की कमी है, बल्कि इसलिए कि नैतिकता का मूल्य अत्यधिक कम है। उस स्थान मे इसका मूल्य अधिक कैसे हो सकता है, जहा झूठ बोलना एक सरकारी हथियार हो और जहा आतक प्रत्येक प्रकार का मूल्य देकर सुरक्षा खरीदने वाले को उपहार बाटता हो ?

सोवियत् प्रयोग परिणाम तक पहुचने के लिए पर्याप्त नही। किन्तु फिर भी यह एक चेतावनी अवश्य है, विशेषत जब कि कोई व्यक्ति गैर-रूसी कम्युनिस्टो के कृत्यो को देखता है, जो कि अपने मास्को-स्थित शिक्षको से कम बे-उसूल नहीं। पीटर महान् (रूसी राष्ट्रीयता) द्वारा कार्ल-मार्क्स समाजवाद को गुलाम बना लेने का अर्थ मार्क्स को उलट देना हुआ। गाधीके साथ मिलकर मार्क्स एक फलदायक खेल बन सकता है। आर्थिक सुधार और क्राति पर्याप्त नही। तानाशाह बेई-मानी, मानवीय कष्टो के सम्बन्ध मे उपेक्षा और जीवन के मूल्य को सस्ता समझने से फूलते-फलते है। प्रजातन्त्रो के बच्चे और युवा व्यक्ति एकतन्त्रवाद के अनैतिक विचारो की पकड मे कम आ सकेगे, यदि प्रजा-तन्त्रीय जीवन उन्हे जीवन के मूल्य, स्वतन्त्रता और सच्चाई की शिक्षा दे, यदि उन्हे मानवीय दया, नम्रता और मित्रता का अभ्यास करने की सीख मिले। कितनी भी समाजीकरण की शिक्षा हम क्यो न दे, किन्तु उससे मनुष्यो, फूलो या सूर्यास्त से प्रेम या पशुओ के प्रति दया करने की शिक्षा प्राप्त नहीं होगी। इसी प्रकार अर्थ-शास्त्र या सरकार की बना-वट के ढग से भी ऐसी कोई वस्तु नही जो कि मानवता के प्रति प्रेम को शीघ्रता के साथ लोगो मे भर दे।

अन्ततोगत्वा सरकार या आर्थिक पद्धति की बनावट भी इनमे स्थित मनुष्यो के चरित्र पर और ये लोग जितने सतर्क होगे उस पर निर्भर है। प्लेटो ने २३०० वर्ष पूर्व जब यह घोषणा की थी, तब कहा था—"मनुष्य जाति सकट का अन्त तब तक कभी नही देख सकती, जब तक कि बुद्धिमत्ता के वास्तविक प्रेमी राजनैतिक शक्ति पर अधि-

कार प्राप्त नहीं कर लेते या किसी दैवी शक्ति की कृपा से राजनैतिक शक्ति जिन लोगों के हाथों में है, वे बुद्धिमत्ता के नाते ऐसे नहीं बन जाते।'

सबसे आवश्यक वस्तु प्रजातन्त्र की उन सतहों से रक्षा करना है जो कि उसे घेरे हुए हैं। यह एक ऐसी नैतिक जिम्मेदारी है, जो कि प्रत्येक व्यक्ति में पैदा होनी आवश्यक है। दान की तरह शान्ति और प्रजातन्त्र का आरम्भ भी घर से ही अथवा मनुष्यों के हृदय से होता है।

जो बात सरकार और आर्थिक संस्थाओं के बारे में है, वही धर्म और पूजा-स्थानों के बारे में भी है। ये भी उतने ही नैतिक होते हैं, जितने कि उनके अन्दर के लोग। महात्मा गान्धी जो कि अत्यन्त धार्मिक थे और जिनकी नैतिकता दर्शन और रहने-सहने के ढंग पूर्णतया अपने धर्म से ही उत्पन्न होता है, कहते हैं—"मैंने किसी भी धर्म में कोई निश्चित प्रगति नहीं अनुभव की। दुनिया के धर्म यदि प्रगतिशील होते, तो दुनिया ऐसा धोखे का बाजार नहीं बनती जैसी कि आज बनी हुई है।" रूस के यूनानी कट्टर गिरजे के मुखिया स्टालिन को "ईश्वर का मसीहा' घोषित करते हैं। प्रत्येक वाद के समर्थक जर्मन पादरी ईसाइयत को उस समय भूल गए थे, जब कि एक जोशीले राष्ट्रवादी के रूप में उन्होंने हिटलर का समर्थन किया था। कैथोलिक पादरियों और सामान्य जनों ने तानाशाह फ्रांको की मदद की और अब भी करते हैं, यद्यपि प्रमुख कैथोलिक सामान्य-जन फ्रान्सिस सी० मैकमाहोन के ३० अप्रैल १९४७ को 'न्यूयार्क पोस्ट' में छपे लेख के अनुसार स्पेन के कैथोलिक गिरजे को "केवल उतनी ही छूट प्राप्त है, जो कि तानाशाह के हित की पालना करती हो।" इटली के कैथोलिक पादरियों ने एबीसीनिया (हब्श) के साथ बलात्कार के समय मुसोलिनी की सहायता की। इस कार्य के लिए बिशपों ने सोना जमा किया।

ईसा नैतिक और प्रजातन्त्रवादी थे। कितने ईसाई ईसा का अनुकरण करते हैं? हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था अनैतिक और अप्रजातन्त्रवादी है।

कितने हिन्दू इसके विरुद्ध लड़ने के कार्य में गांधी का अनुकरण करते हैं ? इस्लाम भ्रातृत्व की शिक्षा देता है। यह एक अत्यन्त प्रजातंत्रवादी धर्म है। किन्तु मिश्र, ईराक़, ट्रांसजोर्डन, ईरान और सऊदी अरब कितने प्रजातन्त्रवादी हैं। यहूदियत में उच्च शिष्टाचार सम्बन्धी नियम हैं। कितने यहूदी इसका अनुकरण करते हैं ?

पूजा-स्थान तब ही नैतिक हो सकते हैं, जब कि वे एक ठोस तरीके से अत्यधिक और एक-छत्र शक्ति के कारण उत्पन्न हुई शक्ति-समस्या में अपने-आपको उलझा सकें।

ग्यारहवाँ अध्याय

रूस की शक्ति का क्या कारण है ?

संसार की सबसे महान शक्ति की समस्या रूस है। दुनिया भर में सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति स्टालिन हैं। वे शक्ति-पुरुष हैं और शक्ति के नियमों को जानते हैं। उन्होंने अपने देश में अत्यधिक शक्ति अपने बुद्धि-बल द्वारा ही प्राप्त की है और अब विदेशों में [illegible] शक्ति उन्होंने प्राप्त कर ली है।

यह कैसे सम्भव हो सका कि सोवियत यूनियन [illegible] और, वास्तव में, समस्त प्रजातन्त्रीय दुनिया से मुकाबला कर सका ? सोवियत सरकार ने न तो अपनी जनता को पर्याप्त सामग्री प्रदान की है और न काफी स्वतन्त्रता। फौजी दृष्टि से रूस अमरीका की अपेक्षा [illegible] है। स्पष्टतया स्वतन्त्रता तानाशाही की अपेक्षा ज्यादा अच्छी वस्तु है। फिर भी, कम्युनिस्ट कैसे प्रजातन्त्रवादी दलों का मुकाबला कर सके हैं।

समस्त दुनिया में रूसी शक्ति और कम्युनिस्ट प्रसार का [illegible] कौनसा है ?

हाल में हुई पेरिस शान्ति-कान्फ्रेंस के दिनों में एक बूढ़ा पेरिस निवासी नाई मेरे बालों को काटने का काम समाप्त करके हटा [illegible] कि मूर्खतावश मैंने उसे जैतून के तेल की मालिश सिर पर करने का [illegible] दे डाला।

उसने मुँह खोलकर आह भरते हुए कहा—'जैतून का तेल ! [illegible] वालों के लिए ? यह अपने पेट भरने के लिए भी [illegible] नहीं मिलता।" उसने परिस्थितियों की शिकायत की। [illegible] में [illegible]

की—"अगली बार मै कम्युनिस्टो के पक्ष मे मत दूगा। और सब कोशिश करके असफल रह चुके। मै कम्युनिस्टो को एक अवसर देने के पक्ष मे हूं। उनका कहना है कि वे यह काम कर सकते हैं।"

नाई कोई कम्युनिस्ट नही था, किन्तु परिस्थितियां खराब थी। वह पूंजीवाद मे अपना विश्वास खो चुका था। उसे कुछ बहुत अधिक नहीं खोना पडा। मैंने स्वतन्त्रता की चर्चा चलाई। उसने आश्चर्य से भरकर चिल्लाते हुए कहा—"वाह, स्वतन्त्रता। मुझे काम सदैव मिल जायगा। नात्सियो के शासन के अन्दर रहते हुए भी मैने काम चला लिया था।" फ्रेंच कम्युनिस्ट दल को मिलने वाले एक मत की यह कहानी है। ऐसा वह अकेला ही व्यक्ति नही।

१९४२ की ग्रीष्म ऋतु मे मैं जेरूसलम मे था। नात्सी मार्शल रोमेल काहिरा और स्वेज नहर की ओर आगे बढ रहा था। यदि वह सफल हो जाता तो युद्ध का पलडा नात्सी-विरोधी-सयुक्त मोर्चे के विपक्ष मे हो जाता। जेरूसलम के अरब-नेताओ ने मुझे बताया कि फिलस्तीन के अरब रोमेल के आगे बढनेकी आशा लगाये बैठे है और उसके स्वागत की तैयारिया कर रहे हैं। क्यो? क्योकि अरब अंग्रेज-विरोधी थे। नात्सी अंग्रेजो से लड रहे थे। इसलिए अरब नात्सी-पक्षपाती हो गए।

१९४६ की ग्रीष्म ऋतु मे मै फिर जेरूसलम में था। एक प्रसिद्ध अरब महिला ने अपने घर पर, जो कि स्कोपस पर्वत के ढाल के पास था, भोजन करने के लिए आने का मुझे निमन्त्रण दिया। कई युवा अरब नेता उपस्थित थे। एक अरब ने मुझसे कहा कि "यदि ब्रूटेन ने यहूदियत से पक्षपात करते हुए कोई हल यहा लागू किया तो अरब रूस के साथ हो जायगे।" एक दूसरे अरब ने इस पर टिप्पणी की—"रूस से मुक्ति की आशा करना वैसा ही है जैसे डूबने से बचने के लिए शार्क मछली को पकड लेना।" फिर भी, मास्को से प्रेम-चर्चा चलाने वाले अरबो की सख्या थोडी नही है। सिद्धात वही है—अरब अपने-आपको ब्रूटिश-विरोधी अनुभव करते है। रूस निकट पूर्व से ब्रूटेन को

करते। बल विशिस्की की बृटिश विदेश-मन्त्री अर्नेस्ट बेविन के साथ हुई बहस पर दिया जाता है जिसमे रूस इन्डोनेशिया के मित्र के रूप में दिखाई पड़ता है। बल रूसी विदेश मन्त्री मोलोतोफ के उस मत पर दिया जाता है, जोकि दक्षिण-अफ्रीका के गोरो के विरुद्ध संयुक्त-राष्ट्रो में भारत के प्रस्ताव के पक्ष मे दिया गया है।

पूर्व के भूखे, करोड़ो व्यक्ति सीधे-सादे और मोटे रूप मे ही सारी स्थिति को देखते है। वे विदेशी साम्राज्यवादियो से स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं। ये विदेशी साम्राज्यवादी ग्रेट बृटेन, फ्रान्स, हालैण्ड और पुर्त्तगाल हैं। अमरीका बृटेन का पक्ष लेता है। रूस साम्राज्यवाद का विरोध करता है। इसलिए उपनिवेशों मे बसने वाले लोग रूस को मैत्री-पूर्ण दृष्टि से देखते है।

एशिया स्थित एक निरीक्षक वहां श्वेत लोगो और पश्चिम के विरोध से भरी एक उठती हुई लहर को पायगा। इस प्रकार का विचित्र भय एक भद्दी और असंस्कृत वस्तु है। आधुनिक मनुष्य के एक ऐसी खाड़ी में पतन का यह दृश्य है, जहा से उसकी मुक्ति होनी कठिन होगी। यह नात्सियों की जातीय घृणा और अमरीकन वहशियो की "श्वेत रंग की श्रेष्ठता" के रंग-पक्षपात से मिलती-जुलती वस्तु है। गाधी के उपदेशों की हिंसा करने वाली यह चीज है। वर्तमान संकट-काल के अत्यन्त खतरनाक चिह्नो मे से एक है।

भारत मे मैंने चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य से बातचीत की, जो कि गान्धी के पुराने मित्र तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक पुराने नेता और वर्तमान भारत-सरकार के एक सदस्य हैं। उन्होंने कहा—"अमरीका जब जर्मनी से लड़ रहा था तब भी उसके पास परमाणु-बम था। किन्तु उसने जर्मनी पर यह बम इसलिए नही फेंका, क्योंकि वे श्वेत लोग है। उसने बम जापानियो पर बरसाया, क्योंकि उनकी चमड़ी रंगीन थी।" कोई भी तर्क उन्हें ऐसा कहने से नहीं रोक सका। एशिया में इसी वक्तव्य को मैने कई बार सुना है। यह सत्य नहीं है। हिटलर

बुराइयो का इलाज करने की पूरी चेष्टा करें जिनसे कि कम्युनिस्ट लाभ उठाते हैं।"

एशिया को भोजन और आजादी की आवश्यकता है। सकट-ग्रस्त और छिन्न-भिन्न, अरक्षित और निर्धन यूरोप भी इसी प्रकार अपने नव-निर्माण और जीवित बच रहने के गुप्त-मन्त्र की खोज मे है। रूस के पास उत्तर तैयार है।

विदेशियो से सम्पर्क बढानेवाले सोवियत सम्पर्क-विभाग के जर्मनी स्थित मुखिया कर्नल तुलपानोफ ने एक जर्मन राजनैतिक नेता से कहा था—"तुमको और सब जर्मनो को, अमरीका और रूस के बीच एक का चुनाव करना है। अमरीका धनी देश है और बहुत कुछ दे सकता है। किन्तु अमरीका मे एक आर्थिक मन्दी आने वाली है। यदि तुम अमरीका से अपना गठबन्धन करोगे, तो यह तुम्हे उसी प्रकार नीचे की ओर धकेल देगी, जिस प्रकार कि १९२९ मे बृटिश मुद्रा के पतन से अनेक यूरोपियन राष्ट्रो मे बुरा प्रभाव पडा था। रूस अमरीका के समान धनी नही। किन्तु हमारी अर्थ-नीति स्थिर है।"

जर्मन नेता को वह विश्वास नहीं दिला सका। वह इस बात का विश्वास नही कर सका कि रूसी अर्थ-नीति स्थिर है या एक अमरीकन व्यापारिक मन्दी की शीघ्र ही आशा की जाती है। वह तानाशाही का पर्याप्त रसास्वादन कर चुका था। फिर भी, रूसी दुबारा यत्न करेंगे। वे जानते हैं कि यूरोप स्थिरता के लिए व्याकुल है।

कम्युनिस्ट इस बात का भी सकेत करते है कि यूरोप मे रूस तो बना ही रहेगा, हो सकता है कि अमरीका यहाँ से हट जाय। इसीलिए कुछ यूरोपियन सार्वजनिक रूप मे अमरीका के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करके अपने-आपको वचन-बद्ध करने से झिझकते है। वे अनुभव करते हैं कि यदि अमरीका हट गया, तब वे सकट मे पड जायंगे।

जर्मनी मे एक रूसी जो कुछ कहता है, उसकी गूंज समस्त ससार के एक दर्जन स्थानों मे होती है। अन्य कहने वालो में टिटसीन, चीन

का दैनिक 'ताकुंगपाओ' नामक पत्र भी है। 'न्यूयार्क टाइम्स' का जो सन्देश बेन्जामीन वेलेस ने भेजा था, उसके अनुसार इस पत्र ने ३ मार्च १९४७ को भविष्यवाणी की थी कि "इस वर्ष के अन्दर ही अमरीका १९२९ की मन्दी की अपेक्षा भी कहीं भीषण मन्दी में पतित होगा। यदि ऐसा हुआ, तो उपरोक्त पत्र ने यह आशा प्रकट की थी कि अमरीका सम्भवत संयुक्तराष्ट्र संघ को त्याग देगा, मध्यपूर्व को छोड़ भागेगा और एशिया को खाली कर देगा।' इसी लेख में चीनी पत्र ने अमरीकन साम्राज्यवाद की भी आलोचना की थी।

अमरीका के भविष्य के बारे में समाचार का गढ़ना [illegible] उथल-पुथल कर देने वाली ऐसी बातें मार्क्सिस्ट योजना में पूर्णरूपेण पूरी उतरती हैं। इस बीच रूस आगे बढ़ता जाता है।

यूरोप और एशिया में रूस का बढ़ना तथा उसकी आक्रमणकारी नीति उसकी शक्ति के दृढ़ अंग हैं। उदाहरण के रूप में रूस ने टर्की से मांग की कि वह अपने दो प्रान्त रूस के हवाले कर दे और दर्रे दानियाल की रक्षा में बोल्शेविक शासन को भी हिस्सा दे। यह मांग टर्की को अधीन कर लेने के समान हुई। किन्तु रूस ने केवल मांग ही उपस्थित की। इस सम्बन्ध में उसने कोई कदम नहीं उठाया। उसने अपनी छाया टर्की पर डाल दी। भयभीत होकर टर्की ने अपनी जन शक्ति के एक बड़े भाग की फ़ौजी लामबन्दी कर ली और इतना अधिक खर्च करके, जिससे कि उसकी राष्ट्रीय अर्थ-नीति में दरारें पड़ने लगीं, अपनी सेनाओं को युद्ध-स्थिति के अनुकूल बना लिया। (हिटलर ने भी इससे मिलती-जुलती नीति आस्ट्रिया, जेकोस्लोवेकिया और फ्रान्स के साथ बरती थी। अपनी फौजें इन देशों में उतारने से पूर्व उसने वर्षों की परीक्षा के युद्ध में उनके हृदयों को खोखला बना दिया था।)

इस महती सफलता पर आनन्द मनाते हुए कम्युनिस्टों ने प्रचार से भी काम लेना शुरू किया। उन्होंने शोर मचाया—'टर्की फ़ासिस्टवादी राष्ट्र है। तुर्कों ने आरमीनियनों का कत्ल किया है। स्वयं विश्व-व्यापी

महायुद्ध मे तुर्क तब तक सम्मिलित नही हुए, जब तक कि यह लगभग समाप्त न हो गया।" ये सब वक्तव्य सत्य ही हैं। इसीलिए सीधे-सादे लोगो ने उदासी से भरकर सिर हिला दिए और इस बात को स्वीकार कर लिया कि टर्की इस योग्य नहीं कि उसकी सहायता की जाय। ठीक वही परिणाम निकला जो कि कम्युनिस्ट चाहते थे।

१९१९ मे कमाल पाशा (अतातुर्क) द्वारा नए टर्की के निर्माण के समय से लेकर आज से कुछ दिन पूर्व तक टर्की मे एकदलीय शासनथा। अब एक दूसरे दल को सीमित विरोध करने की स्वीकृति मिल गई है। टर्की के चिरकालिक एक-दलीय जीवन-काल मे रूस के टर्की से संबन्ध अत्यन्त मैत्रीपूर्ण थे। १९२१ और १९२२ के अनातोलियन युद्ध में रूसी सहायता ने ही टर्की को यूनान और इंग्लैण्ड से बचाया था। इसके बाद मास्को ने तुर्कों को आर्थिक परामर्श और धन द्वारा सहायता दी। अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्सो मे (उदाहरण के रूप १९२३ मे लुस्साने मे हुई कान्फ्रेन्स) रूस ने टर्की के हितो और स्वार्थों का समर्थन किया, उस एकदलीय टर्की के हितो और स्वार्थों का जिसमे कम्युनिस्ट हलचल गैर-कानूनी थी और कम्युनिस्टों को निर्दयता-पूर्वक दण्ड दिया जाता था। किन्तु अब सहसा ही क्रेमलिन ने यह बात खोज निकाली कि टर्की प्रजातन्त्रवादी राष्ट्र नही।

कौनसी वस्तु परिवर्त्तित हो गई? रूस परिवर्त्तित हो चुका है। रूस इस बात पर बल दे रहा था कि उसकी मागे टर्की को स्वीकार कर लेनी चाहिए। टर्की इन मागो का मुकाबला करने को तैयार था। तत्काल ही रूस ने यह बात खोज निकाली कि टर्की अप्रजातन्त्रवादी राष्ट्र है। तत्काल ही कम्युनिस्टो ने यह खोज निकाला कि टर्की में स्थित आरमीनियो को रूस के हवाले कर देना चाहिए।

२४ मार्च १९४७ को वाशिंगटन-स्थित अमरीकन राज्य-विभाग ने १९४३ के दिसम्बर में तेहरान में हुई तीन बडे राष्ट्रों की कान्फ्रेन्स में तय किये गए गुप्त समझौतो मे से एक को प्रकाशित कर दिया। इसकी

मूल प्रति के अनुसार रूजवेल्ट, चर्चिल और स्टालिन ने निश्चय किया—"यह सबसे अधिक वाञ्छित वस्तु है कि टर्की इस वर्ष की समाप्ति से पूर्व ही मित्रराष्ट्रों की ओर से युद्ध में कूद पड़े।" उस प्रजातन्त्रीय टर्की को वे अपनी ओर चाहते थे। और उन्होंने "मार्शल स्टालिन के इस वक्तव्य पर विशेष ध्यान दिया कि यदि टर्की अपने-आपको जर्मनी के साथ युद्ध में फंसा हुआ देखे और इसके फलस्वरूप बल्गेरिया टर्की के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दे या उस पर आक्रमण कर दे तो सोवियत तत्काल ही बल्गेरिया से युद्ध छेड़ देगा।" स्टालिन प्रजातन्त्रवादी टर्की की रक्षा करते।

उस समय टर्की युद्ध में सम्मिलित नहीं हुआ। वह बहुत बाद में इसमें शामिल हुआ। रूसी और कम्युनिस्ट इस बात के लिए टर्की को दोष देते हैं। किन्तु बल्गेरिया कभी भी मित्र-पक्ष में सम्मिलित नहीं हुआ। वास्तविकता यह है कि बल्गेरिया देर तक हिटलर का मित्र बना कर लड़ता रहा और रूस को बल्गेरिया के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनी पड़ी और उस पर आक्रमण भी करना पड़ा। फिर भी 1946 में हुई पेरिस शान्ति-कान्फ्रेन्स में रूस ने मांग की कि भूतपूर्व शत्रु देश बल्गेरिया को यूनान के, जो कि दृढ़ता पूर्वक इटालियन और जर्मन-आक्रमणों का मुकाबला करता रहा, कुछ प्रदेशों को अपने साथ सम्मिलित करने का अधिकार दे दिया जाय।

क्यों ? क्योंकि बल्गेरिया रूसी कठपुतली बन गया है और टर्की ने वैसा बनने से इन्कार कर दिया है।

रूसी कूटनीति और कम्युनिस्ट मोर्चेबन्दी की अनैतिकता का, जो कि प्रजातन्त्रों से टक्कर ले रही है, यह एक स्पष्ट उदाहरण है। रूस के राष्ट्रीय स्वार्थों का पहले ध्यान दिया जाता है। किसी भी देश के प्रति मास्को की नीति का सम्बन्ध उस देश के राजनैतिक आचरण से सर्वथा ही नहीं होता। स्टालिन हिटलर से भी समझौता कर चुके हैं और आक्रमणकारी जापानियों के साथ भी उनका समझौता हो चुका है।

उन्होंने अर्जेन्टाइना के तानाशाह पैरोल से भी मैत्री-सन्धि की है। रूस की काल्पनिक विचार-धाराएं और राजनीति दूसरों को गुमराह करने और भ्रम उत्पन्न करने का ही कार्य करती हैं। यह बात पूर्णतया पार-दर्शक होनी चाहिए थी। किन्तु है ऐसा नही।

स्टालिन और कम्युनिस्टों की असैद्धान्तिकता या बे-उसूलेपन ने रूस को अनेक विजयों के दिलाने में सहायता की है।

सोवियत् सरकार संसार को या किसी एक भी महाप्रदेश को अपने शस्त्रों के बल पर जीतने की कोई योजना नहीं तैयार कर रही। यह कार्य कठिन और मूर्खतापूर्ण होगा। कम्युनिस्टों का यह पूर्ण विश्वास है कि लोगों की निराशा से लाभ उठाने तथा वर्तमान गड़बड़ स्थिति को और भी उग्र बनाने के लिए मास्को से मिली तनिक-सी सहायता द्वारा ऐसी स्थिति पैदा की जा सकती है कि प्रजातन्त्रीय देश स्वयं ही अ-सोवियत् संसार का विध्वंस कर दें। आज तक प्रजातन्त्रवादी देश इस उद्देश्य की पूर्ति में उनका काफी हाथ बटा चुके हैं।

स्टालिन-हिटलर के समझौते के फलस्वरूप रूस ने कर्जन लाइन तक आधे पोलैण्ड को, समस्त एस्थोनिया, लेटविया व लिथुआनिया को, और रूमानिया के एक भाग को अपने में सम्मिलित कर लिया। फिनलैण्ड पर आक्रमण करने के फलस्वरूप रूस ने फिनलैंड के एक हिस्से को भी अपने में सम्मिलित कर लिया। रूस की फौजी शक्ति और स्टालिन की जबर्दस्त कूटनीति के फलस्वरूप तथा इसके साथ ही पश्चिमी राजनैतिक भूलों की कृपा के कारण रूस ने जर्मन-प्रदेश, पोलिश-प्रदेश, जैकोस्लोवेक-प्रदेश और जापानी-प्रदेश अपने में सम्मिलित कर लिए। यह सब मिलाकर दो लाख वर्गमील भूमि होगी जिसमें ढाई करोड़ व्यक्ति बसते हैं।

दूसरे देशों की भूमियों को संयुक्त करने के ये समस्त सोवियत्-कार्य अटलांटिक-चार्टर को भंग करते हैं। इनमें से अधिकांश उन सन्धियों को भंग करते हैं जो कि इनमें सम्मिलित देशों से रूस ने की थीं। जर्मन

का 'था', या इस पर शक्ति के बल पर अन्यायपूर्ण ढंग से अधिकार किया हुआ था ? यह बात ही कि भले आदमी 'थे' शब्द का प्रयोग कर सकते है, हमारे नैतिक पतन की एक निशानी है। एक समय अपने किसान-गुलामो के बारे मे एक जमींदार इसी प्रकार कहा करता था। वे उसके 'जीवन' थे और उन पर उसका अधिकार था, अर्थात् वे उसके 'थे'। अब हम एक सीढी ऊपर चढ गए है (या गिर गए है)। समस्त जातियो के लोग अब उनके "होते है" जो कि उनके साथ जबरदस्ती करने की शक्ति रखते है।

इन प्रदेशो को पूर्णतया संयुक्त करने के अतिरिक्त सोवियत सरकार ने, युद्ध के बाद अमरीका और बृटेन से समझौता करके कोरिया जर्मनी और आस्ट्रिया के बडे हिस्सो पर भी अधिकार कर लिया है। और वह फिनलैण्ड, पोलैण्ड और रूमानिया के शासन मे तथा जेकोस्लोवेकिया, हंगरी बल्गेरिया, युगोस्लाविया, अल्बानिया और मचूरिया के एक भाग मे भी प्रभावशाली अधिकार रखती है। ये देश जिनकी अनुमानित आबादी १९ करोड है, सोवियत प्रभाव-क्षेत्र तथा साथ ही नये सोवियत साम्राज्य को निर्धारित करते है।

सोवियत साम्राज्य, प्रजातन्त्रो मे सोवियत-विरोधावाद, या परमाणु-बम पर अमरीकन अधिकार का परिणाम नही। अधिकांश सोवियत साम्राज्य उस समय बना है, जब कि रूस इंग्लैण्ड और अमरीका के आपसी सम्बन्ध अच्छे थे, जब कि उधार पट्टे के अनुसार पश्चिमी शक्तियो से रूस को खरबो रुपया मिल रहा था और जब कि अभी प्रथम परमाणु-बम फटा नही था। अधिकाश सोवियत साम्राज्य अमरीका और बृटेन की प्रसन्नता पूर्वक दी गई स्वीकृति की कृपा के फलस्वरूप बन सका है।

सोवियत साम्राज्य शक्ति की पैदावार है। यह इसीलिए कायम है, चूंकि जर्मनी, इटली और जापान दब चुके है, चूकि युद्ध ने इंग्लैण्ड

और फ्रांस को कमजोर कर दिया है, और चूंकि या तो इस ओर से अमरीका कुछ करने के योग्य नहीं या कुछ करना नहीं चाहता।

सोवियत-साम्राज्यवाद रूसी और यूक्रेनियन राष्ट्रीयता द्वारा तथा युद्ध-पीड़ित रूस को चारों ओर के राष्ट्रों की सस्ती सहायता द्वारा पुरानी अवस्था में लाने की सोवियत इच्छा का उप-परिणाम है।

हिटलर और स्टालिन के विस्तार के बीच एक बेचैन बनाने वाली समानता है। दोनों को ही उन प्रजातन्त्रों ने सहायता दी जिनसे उनके विस्तार से सबसे अधिक खतरा था। दोनों ने ही प्रजातन्त्रों के लिए तानाशाहों के हृदयों में जो घृणा रहती है, उसकी जनता को शिक्षा दी। बर्लिन और मास्को के दृष्टिकोण से देखने पर प्रजातन्त्र एक विनाश की भावना से भर आगे जाते हुए प्रतीत होते हैं। हिटलर और जापानी दोनों ने यह सोचने की भूल की कि वे जितना चाहें, उतना आगे बढ़ सकते हैं।

साम्राज्यवाद की अपनी ही चाल होती है। इसीलिए हर प्रकार का साम्राज्यवाद और विस्तार बुरा होता है—चाहे वह रूसी हो, बृटिश हो या अमरीकन हो। साम्राज्यवाद कभी सन्तुष्ट नहीं होता। यह दूसरों में भी साम्राज्यवाद के बीज बो देता है और तब वे सब स्कूल में पढ़ने वाले बच्चों की भाँति विवाद करते हैं कि इसका प्रारम्भ किसने किया था।

जर्मनी के बाहर हिटलर ने संचित शस्त्रों द्वारा, जासूसों के बल पर विदेशों में रहने वाले पंचमांगी जर्मनों की सहायता से जो कि अपने देश की अपेक्षा नाज़ियों के प्रति वफादार थे, प्रजातन्त्रों को सन्तुष्ट कर कुछ प्रतिक्रियावादियों के साथ सहयोग कर और प्रजातन्त्रों में सामरिक, राजनैतिक और नैतिक तोड़-फोड़ कर प्राप्त की थी।

यह तोड़-फोड़ हमारे महायुद्ध के कारण और भी बढ़ गई है और इसने रूस के बाहर शक्ति प्राप्त करना स्टालिन के लिए सुगम कार्य बना दिया है। यह कार्य इतना सुगम सिद्ध हुआ है कि हिटलर भी कहीं

के लिए स्टालिन को उत्साह प्रदान करता रहा है। वे अपने प्रतियोगियों द्वारा की जाने वाली नई-नई भूलों पर विश्वास करते हैं।

अटलांटिक चार्टर के निर्माताओं ने शक्ति के कारण पैदा होने वाले सकट को स्वीकृत किया है। समस्त धुरी-विरोधी लडाकू देशों ने इस चार्ट पर हस्ताक्षर कर दिये है और इस प्रकार अपने-आपको वचन-बद्ध कर दिया है कि वे "प्रादेशिक या अन्य किसी प्रकार के विस्तार का यत्न नही करेंगे।" दुनिया का अनुभव बताता कि है विस्तार युद्ध की ओर ले जाता है। इग्लैण्ड और अमरीका को दो विश्व-व्यापी महायुद्धो मे एक ही मुख्य कारण से लडना पडा। वे समस्त यूरोप पर एक ही देश के प्रभुत्व को रोकना चाहते थे। यूरोप के स्वामी बनने की लालसा मे हिटलर ने एशिया के स्वामी बनने की लालसा रखने वाले जापान के साथ जो षड्यन्त्र रचा था, वह अमरीका और बृटेन के लिए एक विनाशकारी सकट होता। इस षड्यन्त्र को पूर्ण होने से रोकने के लिए पश्चिमी शक्तियाँ युद्ध की आग मे कूद पडी। यदि रूस यूरोप पर प्रभुत्व पाने की और इसीलिए एशिया पर भी प्रभुत्व प्राप्त करने की धमकी दे, तो एक तीसरा महायुद्ध इतना निकट आ जायगा, जिसका अन्दाजा नही किया जा सकता।

मैक्सिको शहर मे प्रधान रूजवेल्ट ने कहा था—"हम एक ही पीढी मे दो महायुद्ध लड चुके हैं। हमने पाया है कि ऐसे विश्व-व्यापी युद्धो मे विजेता भी घाटे मे रहता है और पराजित भी।" स्टालिन ने भी इस सचाई का अनुभव किया है। दूसरे महायुद्ध के कारण रूस मे हुए महाविनाश को और लाखो की सख्या मे गिने जाने वाले रूसी-मृतको (अनुमान १॥ करोड का है) और अपगो को वे भी देखते है। तीसरा महायुद्ध इससे भी अधिक विनाशकारी होगा, चाहे कोई जीते कोई हारे। मै इस बात का विश्वास नही करता कि स्टालिन एक विश्व-व्यापी क्रान्ति चाहते हैं। कोई भी आदमी नही कहता—"मै अपनी भुजाओं और बमो की शक्ति से समस्त ससार को विजयी करूगा।"

किन्तु स्टालिन सदैव और भी अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहते है, ऐसे अवसर प्राप्त होने पर शक्ति की वृद्धि के लिए उनसे लाभ उठाते हैं और कभी-कभी वे स्वयं ऐसे अवसरों की सृष्टि भी करते हैं। यदि उससे दूसरे राष्ट्रों मे दरिद्रता, अत्यधिक कष्ट और वरन् झगड़े भी पैदा होते हों, तो उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं होती। हम कह चुके है कि कम्युनिस्ट अर्थ-नीति सर्वोत्कृष्ट है। उन्हें इस बात का निश्चय है कि पूंजीवाद का विनाश आवश्यक है उनकी पद्धति समस्त संसार का शासन करेगी और वे इस काया-पलट के लिए मार्क्स द्वारा भेजे गए दूत है। आज की प्रत्येक घटना को वे कम्युनिस्ट-विजय की सीढ़िया समझते है। सोवियत नीति तथा विदेशी कम्युनिस्टों के रुख इस बात का सकेत करते है कि मास्को अवसाद, निराशा, असंतोष तथा वस्तुओं की कमी के इस युग को, प्रजातन्त्रीय दुनिया को नीचा दिखाने का सर्वोत्तम अवसर अनुभव करता है। विशेषत उस दिन के बाद से, जब से कि पूंजीवादी पतन के चिन्ह क्षितिज पर दिखाई देने लगे हैं जिस बात पर सोवियत पत्र बारम्बार बल देते थकते कभी नहीं थकते।

सीमित साधनों से स्टालिन बहुत बड़ी वस्तुओं की प्राप्ति की आशा करते है। उनके उत्साह प्राप्त करने का सबसे बड़ा स्रोत स्वयं उन शत्रुओं की मूर्खताएं है, जो कि स्टालिन को समझते नहीं। प्रजातंत्रों के विनाश और स्वयं पद त्याग द्वारा स्टालिन और भी अधिक शक्ति प्राप्त करने की आशा रखते है। यह रूस की सबसे अधिक विनाशकारी भूल हो सकती है।

एक ऐसा आक्रमणकारी जिसे सन्तुष्ट कर दिया गया हो, खतरनाक होता है। वह नहीं जानता कि कब और कहां रुकना है। युद्ध के बाद से स्टालिन ने आगे की ओर बढ़ते जाने का अपना क्रम जारी रखा हुआ है। ईरान के अजरबैजान प्रान्त मे उन्होंने एक कठपुतली सरकार की स्थापना की और जबकि ईरानी भूमि मे रूसी फौजें मौजूद थीं, उन्होंने तेहरान के अधिकारियों पर दबाव डालकर रूस के लिए तेल-रियायतें

की स्वीकृति देने के लिए उन्हे मजबूर किया। कुछ मास बाद अजर-बैजान का सितारा डूब गया, क्योंकि ईरानी सरकार ने, अमरीका द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर, अपनी सेनाए इस प्रात मे प्रविष्ट कर दी। जनता ने सैनिकों का स्वागत किया और रूसी कठपुतले सोवियत यूनियन मे जान बचाकर भाग निकले। सोवियत विस्तारवाद को यह ही एक धक्का लगा है। जुलाई १९४५ मे, पोट्सडैम मे स्टालिन ने ट्रूमैन और एटली से कहा कि मै दर्रे दानियाल की रक्षा मे हिस्सा चाहता हूं। फलस्वरूप सोवियत ने सरकारी रूप से टर्की से इस रियायत की माग की। इस माग से रूस को टर्की पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। अब भी माग बनी हुई है। सोवियत सरकारी पत्रो का यह भी कथन है कि टर्की के दो प्रान्त कार्स और अरदाहन भी रूस को दिये जाने चाहिए। 'छोटे स्टालिन' टिटो ने, जो कि अपने तमगो के कारण बिलकुल गोयरिंग जैसा दिखाई देता है, सरकारी तौर पर युगोस्लाविया के लिए यूनानी मकदोनिया, इटली के प्रदेश और आस्ट्रीया के कुछ भागो का दावा किया है। ट्रीस्ट के बारे मे उसकी खींच-तान जारी है।

समस्त सोवियत प्रभाव-क्षेत्र मे कम्युनिस्ट नियन्त्रण दिन-प्रतिदिन मजबूत होता जाता है। रूसी लाल सेना की उपस्थिति की कृपा के कारण, स्वतन्त्र चुनावों मे पराजित होने के बाद भी हगरी के कम्युनिस्टो ने हाल ही मे हगरी की सरकार पर अधिकार करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया है। आस्ट्रीया मे रूसियो ने उन सब व्यापारिक उद्योगों पर अधिकार कर लिया जिन्हे कि आस्ट्रीया-निवासियो से नात्सियों ने छीन लिया था। इस प्रकार आस्ट्रीया का एक बडा हिस्सा रूस का आर्थिक उपनिवेश बन गया है। जर्मनी के रूसी क्षेत्र के उद्योगो का स्वामित्व तथा उनके कार्य-सचालन का अधिकार बडे-बडे सोवियत ट्रस्टो अर्थात कम्पनियो को प्राप्त है। ये उद्योग सोवियत यूनियन की अर्थ-नीति के साथ जोड दिये गए है। जर्मन एकता के नारे लगाने के बावजूद मास्को ने जर्मनी को वास्तव मे दो हिस्सो मे बाट दिया है और फौजी कब्जे को स्थायी

अधिकार में परिवर्तित कर दिया है। सोवियत साम्राज्यवाद निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

यह कहा जाता था कि साम्राज्यवाद की नींव निर्यात की जाने वाली पूंजी पर है। एक औद्योगिक देश के पास फालतू पूंजी और चीजें होती हैं, जिनका कि वह निर्यात करना चाहता है। इसलिए वह उन क्षेत्रों पर अधिकार जमा लेता है, जो कि आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े होते हैं और इन्हें अपना उपनिवेश बना लेता है। किन्तु युद्ध के बाद में रूस ने इससे बिलकुल उलटा काम किया है। वह ऐसे देशों में छा गया है, जोकि अत्यधिक उद्योगों से भरपूर हैं, और कई मामलों में, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से सोवियत यूनियन से श्रेष्ठ हैं। अनेकों तरीकों और विभिन्न समझौतों द्वारा बोल्शेविक अपने नये प्रभाव-क्षेत्र के देशों में तैयार हुई वस्तुओं का निर्यात अपने दुर्भिक्ष-पीड़ित घरेलू बाजार के लिए कर रहे हैं। सोवियत साम्राज्यवाद फालतू वस्तुओं की नहीं, कमी की उपज है। इसका प्रभाव अपने क्षेत्र के अन्तर्गत देशों का शोषण और उन्हें गरीब बनाना है।

अपने साम्राज्य के बाहर सोवियत यूनियन कम्युनिस्ट-दलों के उत्सुक सहयोग का लाभ उठाती है। चाहे ये दल सरकार में हों या विरोधी-दल में। कम्युनिस्टों और उनकी ओर झुकाव रखने वालों ने तथा उनके सीधे-सादे और अन्धे अनुयायियों ने, ट्रेड यूनियनों का विश्व-संघ संगठित कर रखा है। रूसी विदेश-मन्त्री मोलातोफ और संयुक्त राष्ट्रों में रूसी दल प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ में ट्रेड फेडरेशन या संघ के लिए विशिष्ट स्थिति प्राप्त करने की चेष्टा की है। कई देशों में, विशेषतः फ्रांस में, इस संघ का जबरदस्त राजनैतिक प्रभाव है।

सोवियत-स्लाव-कम्युनिस्ट गुट अब भी विस्तार-नीति पर चल रहा है। यह नीति इसी तरह युद्ध की ओर अग्रसर कर सकती है जिस प्रकार कि जर्मनी, इटली और जापान की विस्तार नीति ने संसार को युद्ध की ओर अग्रसर किया था।

सोवियत प्रादेशिक और राजनैतिक विस्तार मे रुकावट डालने की इच्छा का प्रथम कारण तीसरे महायुद्ध को रोकना है। यदि रूस बहुत आगे बढ गया तो दूसरे राष्ट्र इससे भयभीत हो सकते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि १९३९ मे इंग्लैंड भयभीत हो गया था। और भयभीत होने के बाद वे लडने का निश्चय कर सकते हैं।

रूसी शक्ति के प्रवाह के समय तानाशाही का दबदबा भी साथ-ही-साथ चलता है। यह आगे बढता हुआ स्वतन्त्रता की समाप्ति करता चलता है। सोवियत् विस्तार के विरोध का दूसरा कारण यह है।

१९४८ की ग्रीष्मऋतु मे जर्मन-पत्रो मे सोवियतो द्वारा जर्मन लडको के अपहरण किये जाने की सूचनाएं छपी थीं। रूसियो और कम्युनिस्टो ने गुस्से मे भरकर इन खबरो को गलत बताते हुए इस बात मे इन्कार किया था। किन्तु इसी पतझड मे बर्लिन मे मुझे एक पत्र का फोटो प्राप्त हुआ, जिससे इन खबरो की पुष्टि होती थी। यह पत्र रूस-अधिकृत सैक्सनी प्रान्त के समाजवादी-संगठन-दल, जिस पर कम्युनिस्टों का प्रभुत्व है, के नेता ओटो बखवीज ने लिखा था और उस पर उनके हस्ताक्षर भी थे। यह पत्र इसी दल की बर्लिन शाखा के नेता ओटो ओटवो हल के नाम लिखा गया था। पत्र पर ७ मई १९४६ की तारीख थी। यह इस प्रकार प्रारम्भ होता था—

प्रिय ओटो,

नीचे लिखी बात के बारे मे मै तुमसे एक या दो बार बात-चीत कर चुका हूँ। परिस्थिति के कारण मजबूर होने से मुझे फिर इसकी चर्चा करनी पड रही है।

मेरे कागजो मे लगभग चालीस मामले ऐसे व्यक्तियो के है, जिन्हे कि सोवियत खुफिया पुलिस (एन के वी डी) गिरफ्तार कर चुकी है। इनमे से अधिकाश व्यक्ति पन्द्रह व अट्ठारह वर्ष

बाद जबर्दस्ती रूस ले जाया जा चुका है।

एक तानाशाही अपने प्रति सच्चे हुए बिना नही रह सकती। जो उपाय और नैतिकता यह घर पर बरतती है, वही विदेशो को भी भेजती है।

जर्मनी के तीनो पश्चिमी क्षेत्रो मे, कम्युनिस्टो और उनके साथ ही सोशलिस्टो और ईसाई प्रजातन्त्रवादियो के भी राजनैतिक दल हैं। किन्तु पूर्वी रूसी क्षेत्र मे सोशलिस्टो या सामाजिक प्रजातन्त्रवादियो पर रोक लगी हुई है। मध्य वर्गीय 'बुर्जुआ' दल कानूनी तो अवश्य है, किन्तु वे सब जिलो मे अपने उम्मीदवार नही खडे कर सकते। आवरण की ओट मे छिपे कम्युनिस्ट दल को, जिसे समाजवादी-सगठन-दल नाम दिया हुआ है, रूस से पर्याप्त धन की सहायता प्राप्त होती है।

क्योंकि बर्लिन एक ऐसे शासन के अन्तर्गत इकाई मे पिरोया गया है, जिसका कि चारो अधिकृत विदेशी सरकारे प्रत्यक्ष निरीक्षण करती है, इसलिए यहा शहर के हर भाग मे समस्त राजनैतिक दल कार्य कर सकते है। किन्तु फिर भी, जब कि समाजवादी-संगठन-दल ने १९४६ के चुनावो मे बर्लिन के अमरीकन, बृटिश और फ्रेञ्च भागों की दीवारो को अपने विज्ञापनो और पोस्टरो से ढक लिया था, तब रूसी भाग मे सामाजिक-प्रजातन्त्र दल को अपने अनेक पोस्टर चिपकाने की आज्ञा नही दी गई। इन जब्त किये पोस्टरो मे दो इस प्रकार के थे—जहा भय है, वहा स्वतन्त्रता नहीं। बिना स्वतन्त्रता के समाजवाद की स्थापना नहीं हो सकती। तथा नागरिक अधिकार मिले बिना समाजवाद स्थापित नही हो सकता। सम्भवत रूसियो ने इन सीधे-सादे सत्यो को भी सोवियत शासन और कम्युनिज्म की आलोचना ही समझा हो।

यदि रूस जर्मनी मे, जिस पर कि कम-से-कम सैद्धान्तिक रूप मे अमरीकन, अगरेज, फ्रासीसी और रूसी बर्लिन-स्थित मित्र अधिकार-कौसिल मे नियम पूर्वक बैठकर शासन चलाते है, अत्याचार किया और

राजनैतिक दबाव डाला जा सकता है, तो इस बात की कल्पना करनी कठिन नहीं कि हंगरी, रूमानिया, बल्गारिया और युगोस्लाविया जैसे देशों में क्या होता होगा, जहां कम्युनिस्टों और रूसियों का प्रभुत्व है, और जहां विदेशी कूटनीतिज्ञों और सम्वाददाताओं के आवागमन का मार्ग भी अत्यन्त संकीर्ण और भली प्रकार रक्षित है।

सोवियत प्रभाव-क्षेत्र के विभिन्न भागों में, पहचाना जा सकने वाले रूसी अधिकार की मात्रा अलग-अलग है। जैकोस्लोवाकिया और फिनलैण्ड में रूमानिया और बल्गारिया की अपेक्षा यह कम है। किन्तु सर्वत्र ही, आर्थिक दृष्टि से बढ़ रही रूस पर निर्भरता के कारण व कम्युनिस्टों के बढ़ रहे बल के फलस्वरूप और समझे-बूझे तानाशाही के हथकण्डों द्वारा किये गए विरोधियों पर हमलों के परिणाम के तौर पर, मास्को की शक्ति और भी बढ़ती ही चली जाती है।

यूरोप और एशिया में फैला महान्, नवीन सोवियत साम्राज्य एक समय नात्सी, फासिस्ट या जापानी अधिकार में था। स्लाव लोग, यहूदी जनता, जो कि हिटलर के हाथों इतनी निर्दयता से पीड़ित की गई थी, कम्युनिस्ट, और शायद अन्य लोग भी हिटलर की अपेक्षा स्टालिन को अधिक पसन्द करते हैं। किन्तु उनमें से अधिकांश सम्भवतः बिना स्टालिन के भी इससे अधिक खुश रह सकते हैं। वे भूरी या काली तानाशाही के स्थान पर लाल तानाशाही को पसन्द नहीं कर सकते। वे अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की चाहना करते हैं। सोवियत प्रभाव के तब ही देशों में एक कम्युनिस्ट ही, जो कि प्रायः मास्को में शिक्षित किया गया होता है, भीतरी मामलों का मन्त्री या गृह-मन्त्री है जिसके अन्तर्गत खुफिया पुलिस होती है। समस्त रूसी की एक दल पर्व की प्रतिनिधि-वादी सरकार के शासन की अपेक्षा भी इस नागरिक स्वतन्त्रता के अधि-कार प्राप्त हैं। निश्चय ही ये लोग राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को मास्को के साम्राज्यवाद की अपेक्षा कहीं अधिक पसन्द करेंगे। शायद ही वे इस बात को भी न चाहेंगे कि अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों में निर्णय करने की शक्ति

बात मे रूस के पक्ष मे ही मत दे, बल्कि अपने मत के बारे मे स्वतन्त्रता प्राप्त करे। किन्तु यदि एक प्रजातन्त्रवादी, सोशलिस्ट या सामान्यजन, जोकि अपने देश की स्वतन्त्रता के बारे मे विश्वास रखता है, इस बारे मे बोलता है या कोई कदम उठाता है, तो वह या तो जेल मे अपने आपको पाएगा, या साइबेरिया मे, या भागने के लिए बाध्य हो जायगा। हगरी,युगोस्लाविया और बलगारिया के बहुत-से विरोधी दलो के नेताओ को बचकर पेरिस और लदन भागना पडा है। थोडे-से वाशिगटन मे रह रहे है।

सोवियत् प्रभाव-क्षेत्र मे कुछ मजबूत और बहादुर व्यक्ति रूसियो और कम्युनिस्टो के विरुद्ध लडाई चालू रखे हुए है। सोवियत साम्राज्य मे अनेको प्रजातन्त्रीय "शेरो की मान्दे" हैं। खासकर जैकोस्लोवाकिया, फिनलैंड, पोलेण्ड, हगरी, पूर्वीय आस्ट्रिया और पूर्वीय जर्मनी मे। किन्तु इस समय उन्हे राजनैतिक शक्ति प्राप्त नही। रूसी और कम्युनिस्ट शक्ति, दमन और आर्थिक प्रभुता के बल पर दृढतापूर्वक साम्राज्य को सभाले हुए है।

रूसी क्षेत्र मे कम्युनिस्टो को कितना लोक-प्रिय समर्थन प्राप्त है इसका अनुमान लगाना कठिन है। स्वतन्त्र चुनावो मे हगरी के कम्युनिस्टो को कुल पडे वोटो मे से केवल १७ फीसदी ही वोट मिले। जर्मनी के तीन पश्चिमी क्षेत्रो और बर्लिन ने भारी बहुमत से कम्युनिस्ट-विरोधी पक्ष मे मत दिये। ऐसा ही आस्ट्रिया मे भी हुआ। पूर्वीय और मध्य-यूरोप रूसियो को देख चुका है। उन्होने लूट-मार और बलात्कार, मशीनो को रूस उठा ले जाने के कार्य, अपने देश के बाहर रूसियो का रहन-सहन का ढग, सम्पत्तियो की जब्ती और व्यापारिक सन्धियो मे भेद-भाव के दृश्य भी देखे हैं।

उन्होने यह भी विचित्र दृश्य देखा है। ज्योही युद्ध समाप्त हुआ, प्रत्येक अमरीकन सैनिक, ब्रिटिश टामी, फ्रेन्च सैनिक और जर्मन युद्ध-क्षेत्र से घर लौटने की आशा और उत्सुकता मे तडप रहा था। इस स्वा-

पुस्तकालय बता सकते है। किन्तु जो लोग सोवियत् दुनिया मे रहते हैं, अपने-आपको स्वतन्त्र नही कर सकते। जो इस दुनिया मे बाहर हैं उनकी प्राय इन बातो तक पहुच नही होती या वे अपनी मुसीबतो में बुरी तरह फसे रहते है।

यह बहुत सभव है कि सोवियत् दुनिया के लोग—लगभग १८ करोड सोवियत नागरिक और १४ करोड के लगभग रूसी प्रभाव-क्षेत्र मे बसने वाले अन्य व्यक्ति—कुल मिलाकर लगभग ३२ करोड मनुष्य—परिवर्त्तन तथा तानाशाही से छुटकारा पाने के लिए उतने ही उत्सुक हो, जितनी की गैर-सोवियत् दुनिया अपने जीवन के तल को और भी अधिक ऊचा उठाने तथा अपने प्रजातन्त्र को और भी सच्चा बनाने के लिए उत्सुक रहती है, और इस बात की चाहना करती है। किन्तु कठिनाई यह है कि सोवियत् दुनिया के अधिकाश देशो मे लोग इस सम्बन्ध मे बहुत कम ही यत्न कर सकते हैं, जब कि गैर-सोवियत् दुनिया के अधिकाश देशो मे इच्छा के अनुसार काम करने की बहुत छूट है, अर्थात् ये देश बहुत कुछ कर सकते हैं।

सोवियत् विस्तार की कुजी एक ही शब्द द्वारा बताई जा सकती है। यह शब्द है—रिक्तता या अभाव। यूरोप और एशिया मे, जर्मनी, इटली और जापान की पराजय के कारण जो शक्ति-अभाव पैदा हुआ, उससे लाभ उठानेके लिए तथा युद्धोपरान्त के इगलैण्ड और फ्रांस की कमजोरी से लाभ उठा, स्टालिन इन शक्ति से खाली स्थानो में प्रविष्ट हो गए। इसी प्रकार प्रजातन्त्र मे विश्वास की कमी हो जाने से जो राजनैतिक और मनोवैज्ञानिक अभाव पैदा हुआ, उसे भरने के लिए रूस और कम्युनिस्टो ने समस्त ससार मे सर्वत्र ही प्रवेश प्राप्त कर लिया।

ऐसी अवस्था मे शान्ति और प्रजातन्त्र स्थापना की कुंजी यह है कि इस अभाव को भरकर भविष्य के सोवियत् विस्तार मे रुकावट डाली जाय। प्रादेशिक रूप मे रूस का विस्तार नही हो सकेगा, यदि शक्ति के अभाव के बदले उसे शक्ति से सामना करना पडे। राज-

नैतिक और विचारात्मक रूप में भी रूस विकृत न हो सका, यदि प्रजातन्त्र शक्तिशाली, प्रगतिशील और वास्तविक रूप धारण करे।

जब लोग एक आत्मिक खोखलेपन को अनुभव करते हैं, यहाँ तक कि आशा का कोई मार्ग उन्हें दृष्टिगोचर नहीं होता [illegible] जाते हैं, तब वे ठगों की बातें सुनते हैं और तानाशाहों [illegible] बैठते हैं। गैर-जिम्मेवार आलोचना व्यक्तियों [illegible] करने की छूट देने के लिए ये रिक्त-स्थान एक प्रकार [illegible]

रूसी समस्या जर्मन-समस्या का समाधान [illegible] क्योंकि उसी प्रकार से इसका भी उद्गम होता है—अर्थात् जीवन को सन्तुष्ट [illegible] बनाने में वर्तमान सभ्यता का असफल होना। [illegible] साधारण बात हो गई है कि कम्युनिज्म दरिद्रता से पैदा होता है। यह रोटी, कोयले और कपड़े की रुकावट से तो अवश्य पैदा होता ही है, किन्तु इसके साथ ही आत्मिक रुकावट भी इसको पैदा करने का एक साधन है।

बारहवां अध्याय

रूस के साथ विचारों की टक्कर

एक संसार का विचार अत्यन्त प्रशंसनीय आदर्श है और इस नारे का लोकप्रिय बनाने के कारण वैन्डल विल्की को (जिनकी अल्पायु में ही मृत्यु एक अमरीकन राष्ट्रीय दुर्घटना समझी जाती है) प्रजातन्त्रीय प्रसिद्ध पुरुषों के स्मारक-भवन मे एक स्थायी स्थान अपनी मूर्ति के लिए प्राप्त हो गया है। किन्तु दुर्भाग्य से संसार एक नहीं है। यह दो हिस्सो मे बटा हुआ है। इस सचाई को स्वीकार करने मे बहुत बड़ी हानि हो सकती है। सम्भवत एक दिन यह संसार एक हो जायगा। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या यह संसार एक प्रजातन्त्रीय संसार होगा या तानाशाही संसार। इसी प्रश्न पर समस्त शोर, कान्फ्रेंसे, भाषण और झगड़े आज मचे हुए है।

यह कहा जाता था कि रूस और अमरीका एक दूसरे से इतने दूर है कि दोनों के बीच कोई झगड़ा होना संभव नहीं। किन्तु दूसरे विश्व-व्यापी युद्ध ने सारा नक्शा ही बदल दिया। आज जापान, कोरिया, चीन ईरान, टर्की, यूनान, बाल्कन राष्ट्रों, आस्ट्रिया, जर्मनी फ्रांस, इटली अटलांटिक सागर और उत्तरीय ध्रुव सागर मे रूस और अमरीका एक दूसरे के पड़ोसी और प्रतियोगी है। समस्त विश्व मे रूस और अमरीका के बीच राजनैतिक और विचारात्मक झगड़े मच रहे है।

लैटिन अमरीका मे भी, जहा कि अमरीका के इन देशो से जुड़ा होने तथा अपनी अविवादास्पद प्रमुखता के कारण अव-

अन्धे या बेवकूफ इसे नही देखते है। ऐसे भी लोग हैं जो इस भय से कि कही हम देखने के बाद लड़े और इस युद्ध को जीत ले, इसलिए यह नही चाहते कि हम इसे देखे।

प्राय कहा जाता है—"रूस से टक्कर लेने की क्या आवश्यकता है ? हमे रूस के साथ मिलकर चलना चाहिए। हमे समझौते से काम लेना चाहिए और आधा रास्ता तय करके रूस से मिलने का यत्न करना चाहिए।"

पोलैण्ड, जर्मनी, आस्ट्रिया, युगोस्लाविया, हंगरी, रूमानिया और बल्गारिया के सम्बन्ध मे बृटिश और अमरीकन सरकारो ने रूस से समझौता किया। रूजवैल्ट और चर्चिल ने स्टालिन को आधा पोलैण्ड दे दिया और शेष आधे का शासन वारसा से करने के लिए इस आधे भाग मे भी मास्को द्वारा बनाई गई सरकार को ला बिठा सकने की सम्भावनाए पैदा कर दी। स्टालिन से केवल इस बात का वचन लिया गया कि पोलेण्ड मे "स्वतन्त्र और बेरोक-टोक चुनाव" किये जाय। उन्होने यह वचन भी दे दिया। बाद मे उन्होने यह वचन भग कर दिया। उन्होने रूमानिया और बल्गारिया मे स्वतन्त्र चुनावो का वचन दिया। यह वचन भी उन्होने भग कर दिया। हगरी मे स्वतत्र चुनाव हुए और कम्युनिस्टो को केवल १७ प्रतिशत मत मिले। किन्तु कुछ मास बाद, हंगरी स्थित रूसी फौजी शक्ति की कृपा के कारण अल्पमतीय कम्युनिस्टों ने हगरी की सरकार पर अधिकार कर लिया, और जो कुछ भी मास्को ने मागा वह सब कुछ उसने एकपक्षीय व्यापारिक सन्धियां करके उसे प्रदान कर दिया। १९४५ के जुलाई और अगस्त मे पोट्सडैम मे स्टालिन ने स्वय इस बात का वचन दिया कि जर्मनी को एक आर्थिक इकाई के रूप मे माना जायगा। रूस ने इस वचन का भी पालन नही किया। स्टालिन ने वचन दिया कि वे एक निश्चित तारीख तक ईरान खाली कर देगे। इस तारीख के खत्म हो जाने के बाद भी रूसी फौजे वहाँ बहुत दिन तक रही। रूसी देने और लेने की जिस नीति

की चर्चा करते हैं, वास्तव में उनका रूप यही है। वे एक वचन दे देते हैं और बाद में इसे वापिस भी ले लेते हैं।

रूस से समझौता करने के लिए प्रजातन्त्रों ने अटलांटिक चार्टर के सिद्धान्तों में भी समझौते किए। किन्तु ऐसा करना पूर्णतः विनाशक सिद्ध हुआ। प्रजातन्त्रों ने जो कुछ उन्हें दिया स्टालिन ने वह सब ले लिया और बाद में और ले लेने के लिए यत्न किया। यह भी लेने और देने की नीति हुई। प्रजातन्त्र देते हैं और रूस ले लेता है।

जर्मनी का पूर्वी आधा हिस्सा रूस के पास आगया। उसको या तो रूस ने प्रत्यक्ष रूप में अपने में सम्मिलित कर लिया या उसे रूस की कठपुतली बनी हुई पोलैण्ड की सरकार को इनाम के रूप में दे दिया या यह रूस द्वारा अधिकृत जर्मन भाग के रूप में उसे मिला। क्या इतने से क्रेमलिन सन्तुष्ट हो गया? नहीं, उस दिन के बाद से इसकी कोशिश समस्त जर्मनी को जीत लेने की है।

ट्रीस्ट इटली का एक शहर था। भावुकता की दृष्टि से इससे इटली निवासी जुड़े हुए थे। इटली के प्रजातन्त्र को बलि चढ़ाकर प्रजातन्त्रों ने इटली से ट्रीस्ट छीन लिया और अब यह एक अन्तर्राष्ट्रीय शहर बन गया है। किन्तु ट्रीस्ट के बारे में रूसी नाटक का अभी पहला अंक ही समाप्त हुआ है। मास्को से आशीर्वाद प्राप्त युगोस्लाविया के लोग ट्रीस्ट को सोवियत प्रभाव-क्षेत्र में लाने की अब भी कोशिश कर रहे हैं।

कोरिया को रूस और अमरीका के बीच बांट दिया गया था। यह एक समझौता था। किन्तु अब भी झगड़ा जारी है। अमरीका चाहता है कि दोनों अधिकार करने वाली शक्तियां कोरिया छोड़ दें, ताकि कोरिया के निवासी स्वतन्त्र हो सकें। स्टालिन को भय है कि यह बात कोरिया को अमरीकन-पक्षपाती बनाने जैसी होगी।

पश्चिमी शक्तियों और रूस ने जर्मनी के भूतपूर्व मित्र राष्ट्रों के साथ की गई शान्ति-सन्धियों पर हस्ताक्षर कर दिए। फिनलैण्ड, रूमानिया, हंगरी और बल्गारिया से की गई सन्धियां इन चार देशों में रूसी

प्रभुत्व की बात की पुष्टि करती है। इटली से जो सधि हुई, वह इटली के प्रजातन्त्र के विकास मे एक रुकावट है। कूटनैतिक कान्फ्रेन्सो मे होने वाली सन्धियाँ और सौदेबाजियाँ रूसी समस्या की तह तक नही पहुचती।

१९४१ मे हिटलर के विरुद्ध रूस के युद्ध शुरू करने के बाद और खासकर युद्ध की समाप्ति के बाद से पश्चिमी शक्तियो द्वारा रूस के साथ किये गए असख्य समझौतो, रियायतो और आत्म-समर्पणो के बावजूद भी, अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के हल करने के लिए रूस के द्वारा सहयोग या समझौता करने के लिए तैयार हो जाने के लक्षण, यदि कभी पैदा भी होते है तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि इन्हे केवल दूरबीन की सहायता से ही देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त सोवियत सरकार सयुक्त राष्ट्रो या अन्य अधिकारियो द्वारा ठोस बातो, जैसे सास्कृतिक और सामाजिक सम्बन्ध, भोजन, स्वास्थ्य, शरणार्थी, व्यापार, आदि प्रश्नो के सुलझाने के लिए बैठाई गई अधिकांश अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ से भी अलग ही रहती रही है।

यह कहना आसान है—"आधे रास्ते को तय करके रूस के साथ मिलना हमारे लिए आवश्यक है।" ९०प्रतिशत मार्ग तय करके भी हम रूस से मिले है। किंतु रूस १० प्रतिशत भी मार्ग तय कर हमसे मिलने के लिए नही आया।

मास्को के लिए इस बारे मे मास्को का तर्क एक बहुत पर्याप्त तर्क है। मास्को प्रजातन्त्र से एक राजनैतिक युद्ध लड रहा है। मास्को अनेक विजये चाहता हैं, मास्को किसी भी वस्तु को छोडना नही चाहता, मास्को के पास जो कुछ है वह उसे सभाले हुए है और फिर आगे बढने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है। शायद उस अवसर की, जब कि आर्थिक मन्दी अमरीका से आ पहुचेगी।

रूस और अमरीका के या तानाशाहियो और प्रजातन्त्रो के आपसी सम्बन्धों की समस्त समस्या कूटनीति के मैदान से आगे पहुच चुकी है।

अब प्रश्न यह नहीं है कि क्या मास्को और वाशिंगटन आपस में बातचीत कर सकते हैं और किसी समझौते पर पहुंच सकते हैं। जब उनमें मतभेद होता है, तब बहुत कम ही, अगर कभी हुआ भी हो, यह सीधे रूस या अमरीका के राष्ट्रीय स्वार्थों के सम्बन्ध में होता है। यह मतभेद चीन, जर्मनी, यूनान, टर्की, जापान आदि के बारे में है। दोनों में से कोई यह नहीं चाहता कि दूसरा इन देशों को राजनैतिक दृष्टि से विजित कर ले। यह एक राजनैतिक युद्ध है और यह तब तक नहीं रुक सकता जब तक कि रूस या प्रजातन्त्र दोनों में से एक विजय प्राप्त न कर ले।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति परिवर्तित हो गई है। किसी काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सरकारों के आपसी सम्बन्ध हुआ करती थी। कौन कौन से व्यक्ति और कौन-कौन से दल सरकारों में सम्मिलित हो रहे हैं इसका महत्त्व पर्याप्त था, किन्तु यह बाहर वालों के सम्बन्ध की बात न थी। आज भी बहुत से देशों के बारे में यह बात सत्य है। किंतु बड़ी शक्तियां, विशेषकर रूस और अमरीका, एक व्यापक पैमाने पर विदेशी राष्ट्रों की राजनैतिक स्थितियों को रूप देने की चेष्टा कर रही है। क्योंकि यदि फ्रांस कम्युनिस्ट हो जाए, तो इसके फलस्वरूप वह सोवियत प्रभाव-क्षेत्र का एक भाग बन जायगा' इसलिए रूस फ्रांस का कम्युनिस्ट हो जाना चाहता है और अमरीका फ्रांस का कम्युनिस्ट हो जाना नहीं चाहता। इसीलिए क्रेमलिन और व्हाइट हाउस दोनों को, फ्रेंच कम्युनिस्ट दल के बारे में, फ्रेंच ट्रेड यूनियन आन्दोलन में कम्युनिस्टों की कितनी शक्ति है इस विषय में, तथा वह आन्दोलन मास्को से सम्बन्धित है या नहीं, इस बारे में भी, एक समान ही चिंता बनी रहती है। यही बात इटली के बारे में जर्मनी के बारे में, जापान के बारे में और दूसरे बहुत से देशों के बारे में भी सत्य है। यह एक नया विचारात्मक साम्राज्यवाद है जिसके पीछे सोवियत और अमरीकन सरकारें पूरी शक्ति से पड़ी हुई हैं। (इस अमरीकन विचारात्मक या राजनैतिक साम्राज्यवाद को ये देश कैसा समझेंगे, यह बात अमरीका की

घरेलू राजनीति पर निर्भर होगी।)

रूस से बाहर के कम्युनिस्ट दलो को वापिस बुला लेने की बात स्टालिन से कीजिए। आप अमरीका से भी यह मांग कर सकते हैं कि वह गैर-कम्युनिस्टों से सहानुभूति न रखे या जिन सरकारों को कम्युनिस्टो से खतरा है उन्हे कर्ज या उधार न दे।

ऐसे भी लोग है जो सचमुच चाहते है कि अमरीका राजनैतिक युद्ध लड़ने बन्द कर दे, शेष सारी दुनिया पर से अपने हाथ उठा ले और पृथक् रहकर सदैव आनन्दपूर्वक जीवन बिताए। यह नीति केवल क्रेमलिन की और भी अधिक विस्तार प्राप्त करने की कोशिश को तीव्र बना देगी। रूस राजनैतिक रिक्त स्थानो मे ठीक उसी प्रकार प्रविष्ट हो जायगा जैसे कि जर्मनी के दब जाने के कारण खाली छूट गए प्रदेशो से वह प्रविष्ट हुआ था।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति मे नई वस्तु यह ,है कि सोवियत दुनिया और इसके साथ-ही-साथ प्रजातन्त्रीय दुनिया भी विचारात्मक विस्तार मे लगी हुई है। ये विचारात्मक विस्तार राजनैतिक विस्तार के समान ही है। एक कम्युनिस्ट इटली रूस के लिए सम्पत्ति और अमरीका और इंग्लैंड के लिए रुकावट होगा। एक प्रजातन्त्रीय जापान कम्युनिस्ट-विरोधी होगा। यदि अमरीका और इंग्लैंड हट जाय तो जिसका कम्युनिस्ट होना अनिवार्य ही है ऐसा एक कम्युनिस्ट जर्मनी, रूस को राइन पर ला बैठायगा, जहां से वह फ्रांस पर दृष्टि डाल सकेगा। ऐसी अवस्था में फ्रांस भी कम्युनिस्ट हो जायगा। तब तीसरा विश्व-व्यापी युद्ध यूरोप के मोड पर होगा। या, यदि शेष बचे प्रजातन्त्र उस समय तक बहुत कम और कमजोर हो चुके होंगे, तब इससे प्रजातन्त्र की समाप्ति ही हो जायगी।

फासिस्ट आक्रमण, और पर्ल हार्बर पर हुए हमले से मिलने वाली बहुत मूल्य देकर प्राप्त की गई यह एक शिक्षा है। अमरीका के अधिकांश पुराने पृथक् रहने की नीति के समर्थको और यूरोप के अधिकांश प्रसन्न

करने की नीति के अपनाने वालों ने, यह शिक्षा शायद ग्रहण कर ली है। किन्तु इस पृथक् रहने की नीति के समर्थकों की एक नई फसल अब पैदा हो रही है। ये कम्युनिस्ट और उनके सहयोगी हैं, जो चिल्लाते हैं—"यूनान पर से हाथ उठा लो", "टर्की से हट जाओ", "चीन से दूर रहो", "जर्मनी से चले जाओ", "बृटेन की कोई सहायता न करो", इत्यादि, इत्यादि। हाथ उठा लो, हट जाओ और दूर रहो इसलिए कि रूस अपने पंजे गड़ा सके।

क्योंकि प्रत्येक प्रकार का साम्राज्यवाद और प्रत्येक दिशा में विस्तार बुरी चीज है, मैं अमरीकन विस्तार का इतना प्रबल विरोध क्यों नहीं कर रहा जितना कि सोवियत विस्तार का कर रहा हूं? इसका उत्तर यह है कि इन दोनों विस्तारों में अन्तर है। अमरीकन विस्तार के अन्तर्गत देशों में, इस बात की संभावना होती है कि वे जो चाहते हैं उसके लिए लड़ सकते हैं। किन्तु जहां रूसी तानाशाही फैल चुकी होती है, समस्त विरोधों का निर्दयतापूर्वक दमन किया जाता है। तथापि मुझे अमरीकन साम्राज्यवाद का भय है।

ऐसे भी अमरीकन हैं जो कि पृथक्करण की नीति के सर्वथा विपरीत पैरवी करते हैं। ऐसे लोग एक अमरीकन साम्राज्य और समग्र संसार में अत्यधिक अमरीकन शक्ति का सुझाव उपस्थित करते हैं। ये लोग बल देते हैं कि सोवियत साम्राज्यवाद से अमरीकन साम्राज्यवाद की टक्कर हो। मुझे इस बात का पूरा निश्चय है कि यह मार्ग अन्ततोगत्वा हमें आर्थिक संकट, विद्रोह और युद्ध की ओर अग्रसर कर देगा।

कुछ अमरीकन अनुमान लगाते हैं कि रूस के विरुद्ध आर्थिक सहायता और फौजी-संरक्षण के लिए अमरीका पर निर्भर रहने का विचार एक ऐसा विचार है कि ग्रेट बृटेन, बृटिश उपनिवेश, लैटिन-अमरीका, फ्रांस, इटली, जर्मनी, यूनान, टर्की, स्केन्डिनेविया, निकट पूर्व, भारत, इण्डोनेशिया, मलाया, हिन्दचीन, चीन और जापान इसे प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लेंगे। इन लोगों का कहना है कि आखिर वह रूसी-

कार करे भी क्यों नहीं। अमरीका बड़े काले भेड़िये या बड़े लाल भालू से प्रत्येक को बचायगा। यह तो एक देहातियों की-सी सीधी-सादी बात हुई। जहां तक सचाई का सम्बन्ध है ये देश इस विचार का स्वागत नहीं करेंगे। ये इसका अन्तिम क्षण तक डटकर मुकाबला करेंगे। इन देशों में से बहुतों से अमरीका निश्चय ही एक अमरीकन पक्षपाती दल ढूंढ सकता है या ऐसे दल का निर्माण कर सकता है। किंतु इस दल को कड़ा विरोध सहन करना पड़ेगा।

अमरीका के सम्बन्ध में सन्देह और बुरी भावना अब भी विदेशों में विद्यमान है। यह सन्देह कम्युनिस्टों और कम्युनिस्ट पक्षपातियों में ही नहीं किन्तु प्रजातन्त्रवादियों में भी है। इन प्रजातन्त्रवादियों को भय है कि अमरीका बीसवीं सदी का एक महान् दैत्य है, जिसकी महान् आर्थिक और फौजी शक्ति अपेक्षाकृत छोटे देशों पर प्रभुत्व प्राप्त कर लेगी। ये इस बात से चिन्तित हैं कि कहीं अनुदार, पूंजीवादी अमरीका इस शर्त पर सहायता न दे कि सहायता प्राप्त करने वाले देश को अमरीका के आर्थिक और सामाजिक विचारों को अपनाना होगा।

प्रशान्त महासागर के भूतपूर्व जापानी द्वीपों को अमरीका के साथ संयुक्त करने के कारण—सरकारी तौर पर इसे संयुक्त करना कह नहीं पुकारा जाता—एशिया के लोग तथा कुछ ऐसे अमरीकन, जो कि एशिया की मैत्री प्राप्त करने के महत्त्व को समझते हैं आज भी बेचैन हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं दस करोड़ एशिया निवासियों की दोस्ती को प्राप्त करना प्रशान्त के छोटे-छोटे समस्त मूंगों के द्वीपों पर अधिकार करने की अपेक्षा अधिक पसन्द करूंगा, क्योंकि एक हवाई, परमाणु-सम्बन्धित, युद्ध में द्वीप और प्रदेश रक्षा के कोई साधन नहीं हो सकते।

यूरोप में चीन में और जापान में, अमरीका जो कार्य कर रहा है उनकी भी जांच-पड़ताल हो रही है। किन्तु झूठा प्रचार सारे चित्र को बिगाड़ देता है। सचाई यह है कि अपने जर्मन-क्षेत्र में पूंजीवादी अमरीकन सरकार ने समाजवादियों और कम्युनिस्टों के स्वतन्त्र चुनाव

को अरबों रुपयों की सहायता क्यों देता है ?" "प्रजातन्त्र के विस्तार का क्या यही तरीका है ?" वाशिंगटन-स्थित इसके तैयार करने वालों को अमरीकन नीति भले ही निर्दोष प्रतीत होती हो, किन्तु दूसरे छोर से इसे देखने वालों को यह सर्वथा भिन्न प्रतीत होती है।

१९४६ में, बृटेन को दिये जानेवाले अमरीकन ऋण का अनेकों जिम्मेवार अंग्रेजों ने बृटिश पालियामेंट में विरोध किया और इसके विपक्ष मे मत दिये, यद्यपि उस समय उनके देश को आर्थिक सहायता की अत्यधिक आवश्यकता थी। सचाई यह है कि विनाश या दब जाने का भय एक विदेशी सरकार को अमरीका से ऋण मांगने या इसे ले लेने के लिए बाधित कर सकते हैं, किन्तु यह इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि जिन देशों को ऋण दिया जायगा वे इसके लिए कृतज्ञ या इसी कारण से मित्र बन जायगे।

बृटिश शासन से जिसको छुटकारा मिल गया हो ऐसा भारत, इस बात को केवल धमकी मिलने पर ही कि अमरीका भारत के घरेलू या विदेशी कार्यों मे अपना प्रभाव डालना चाहता है, उसे तीव्र विद्वेष भावना से देखने के अतिरिक्त क्या कोई अन्य पुरस्कार देगा ? क्या इण्डोनेशिया या बर्मा या हिन्द-चीन की ऐसी अवस्था मे कोई अन्य भावना हो सकती है ? करोड़ों ऐसे लोग है, जो अपने दावों को मनवाने पर तुले हुए है, जो कि स्वतन्त्र होना चाहते है।

जिन देशों को चुनाव का कोई भी अवसर प्राप्त हो, वे एक प्रमुख शक्ति के साथ, जोकि उनकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को सीमित कर सकती है, अकेले छोड दिया जाना पसन्द नहीं करते। यदि उन्हें सन्देह हो कि अमरीका एक नये साम्राज्यवादी दौर की तैयारी मे है, तब वे मुकाबले या विरोध को दृढ करने के लिए आपस मे संगठित हो जायंगे और सामान्यत कठिनाइयां पैदा कर देंगे। अन्त में, अमरीका को भी वही सब करने को मजबूर होना पड सकता है जो कि स्टालिन आज कर रहे है, अर्थात् अपने प्रभाव-क्षेत्र में तानाशाह के समान कार्य करना,

शक्ति के बल पर कठपुतली सरकारों की स्थापना, विरोधियों का दमन, अमरीकन-विरोधियों को अमरीका के साइबेरियाओं में उसी प्रकार [illegible] करना, जैसे कि रूस ने हंगरी, पोलैण्ड, बल्गारिया, रूमानिया और युगोस्लाविया के विरोधी दलों के नेताओं को किया है।

स्टालिनवाद के हथियारों को लेकर स्टालिन से लड़ने का अर्थ यह है कि आप भी स्टालिनवादी बन जाते हैं।

प्रजातन्त्रीय सरकार और प्रजातन्त्रीय संस्थाओं को कम्युनिस्टों को उनकी अपनी चालों से पराजित करने का यत्न नहीं करना चाहिए। उन्हें प्रजातन्त्रीय उपायों को काम में लाना चाहिए तथा प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों पर चलना चाहिए।

शक्तिशाली फ्रेंच कम्युनिस्ट दल, जिसे बिना गृह-युद्ध के दबाया नहीं जा सकता, फ्रेंच विदेश-नीति पर प्रभाव डालता है, और फ्रांस को एक विशुद्ध प्रजातन्त्र-पक्षीय पश्चिमी देशों का समर्थन करने वाली या अमरीकन-पक्षपाती नीति को अपनाने से रोकता है। समस्या है कि तब तक उस स्थिति पर काबू नहीं पाया जा सकता जब तक कि अमरीका प्रत्येक फ्रेंच गांव और शहर का प्रबन्ध स्वयं करना चाहे। केवल शक्ति के बल पर चीन के कम्युनिज्म से छुटकारा पाया जा सकता है, पर कम्युनिस्ट-अधिकृत चीनी प्रदेशों में, जहां कि पन्द्रह करोड़ व्यक्ति बसते हैं, एक बड़ी लड़ाई मोल लेना। क्या अमरीका ऐसा कर सकता है? मैं समझता हूँ, उत्तर 'नहीं' में है।

जो "वास्तविकतावाद" यह कहता है कि सोवियत साम्राज्यवाद को उसकी अपेक्षा बड़े और अच्छे अमरीकन साम्राज्यवाद से रोकना तुम्हारे लिए आवश्यक है, बिलकुल "वास्तविकतावाद" है ही नहीं। यह मूर्खतापूर्ण और आत्म-पराजय की दलील है।

प्रजातन्त्र पर आक्रमण हो रहे हैं। इसलिए यह जरूरी है कि अधिक प्रजातन्त्रीय, अधिक नैतिक, अधिक ईमानदार, अधिक गान्धीवादी बना

एक प्रजातन्त्र, जो अपने प्रति सच्चा होगा—खासकर संकट काल में वह अपना निर्णय स्वयं कर लेगा।

रूसी विस्तार का प्रत्युत्तर न तो अमरीकन पृथक्करण की नीति है न ब्रिटिश पृथक्करण की नीति। कुछ सीधे-सादे अंग्रेज समझते हैं कि प्रथम परमाणु-युद्ध में कुछ देश तटस्थ भी रह सकेंगे। वे समझते हैं कि जब रूस का विस्तार हो रहा होगा या जब रूस और अमरीका प्रभुत्व प्राप्त करने के लिये लड़ रहे होंगे, वे प्रजातन्त्रवादी ही बने रह सकेंगे। किन्तु प्रजातन्त्र के लिए लड़े जाने वाले युद्ध में इङ्ग्लैण्ड को चोटी के महत्व का स्थान प्राप्त है। बिना इङ्ग्लैण्ड के प्रजातन्त्र नष्ट हो सकता है। इसके अतिरिक्त यदि जान-बूझकर बृटिश राजनीतिज्ञों ने अमरीका से अपने सम्बन्ध बिगाड़ लिए, इङ्ग्लैण्ड की अमरीका के प्रति लड़ाई को देख विस्तार प्राप्त करने के लिए और भी अधिक उत्साहित होगा। पृथक्करण इङ्ग्लैण्ड के लिए भी उतनी ही रद्दी और बेकार वस्तु है, जितनी कि वह अमरीका के लिए है।

रूसी साम्राज्यवाद का अमरीकन साम्राज्यवाद भी कोई उत्तर नहीं। उसके अर्थ हैं संघर्ष, युद्ध और संकट।

न तो इसका उत्तर परमाणु बम है। कुछ बातूनी अमरीकन मास्को पर तथा तोमिस्क पर परमाणु बमों को गिराना चाहते हैं। किन्तु क्या ये प्रजातन्त्र के मित्र हैं? नहीं। ये प्रजातन्त्र के शत्रु हैं। इन लोगों का प्रजातन्त्र में विश्वास नहीं। इन लोगों को विश्वास नहीं कि प्रजातन्त्र शान्तिपूर्ण प्रतियोगिता होने पर सोवियत तानाशाही को जीत सकता है।

मुझे इस बात का विश्वास है।

इसलिए प्रजातन्त्रों और रूस की प्रतियोगिता होने दो। यदि रूस जीतता है, तब कोई भी प्रजातन्त्र शेष नहीं रहेगा। यदि प्रजातन्त्र रूस के साथ चल रहे राजनैतिक युद्ध में जीतते हैं, तो गोला-बारूद की कोई लड़ाई नहीं होगी।

न केवल अमरीका को, बल्कि समस्त गैर-सोवियत दुनिया को,

सोवियत रूस के विरुद्ध राजनैतिक युद्ध लड़ना आवश्यक है। मैं समझता हूँ कि यदि वे विजय के लिए उचित, ठीक सामरिक-नीति को अपनाएँ, तो प्रजातन्त्र विजय प्राप्त कर सकते हैं। प्रश्न यह है कि यह सामरिक-नीति क्या है?

तेरहवां अध्याय

रूस से लड़ाई रोकने की एक योजना

दुनिया एक बुरा झमेला बनी हुई है। यह हो सकता है कि आर्थिक सकट सारी दुनियां को दबोच ले। एक तीसरे विश्व-व्यापी युद्ध होने की भी संभावना है, जिसमें करोडों व्यक्ति हताहत हो। स्वय प्रजातत्र भी मर सकता है। यह निराशावाद नहीं। यह तो केवल सच्चाई है। निराशावादी का कहना है कि इस बारे में कुछ नहीं किया जा सकता। निराशवादी इसे हस कर टाल देता है। वह झूठे अहकार से भरा होता है। वह कत्ल की कहानियों को पढता और शराब पीकर झूमता है। आशावादी इसके विपरीत गभीर बन जाता है। आशावादी एक पैगम्बर, दुख-भरी कहानी का लेखक होता है। वह समझता है कि कुछ किया जा सकता है।

तीसरा महायुद्ध रोका जा सकता है। एक अनिवार्य युद्ध जैसी कोई वस्तु नहीं होती। युद्ध होते नहीं, बल्कि तैयार किये जाते हैं। दूसरे महायुद्ध के निर्णय का इतिहास। पुस्तकों मे छप चुका है, ताकि सब इसे पढ सकें। लडाइयो और युद्धों का निर्णय लाखों मूर्खता-भरी बातों से किया जाता है। इन युद्धों के बुद्धिमत्ता, दिव्य-दृष्टि और समय पर उठाये गए कदमो द्वारा रोका जा सकता है।

प्रजातत्र सदैव ही "ससार की प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित बनाने की दृष्टि से" युद्ध लडने को तैयार रहते हैं। उन्होने प्रथम विश्व-व्यापी युद्ध और दूसरा विश्व-व्यापी युद्ध 'ससार को प्रजातत्र के लिए सुरक्षित बनाने की दृष्टि से" लडा। किन्तु इस पर भी वे युद्धों के बीच के

काल में "संसार को प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित बनाने की दृष्टि से कुछ नहीं करते। और इसीलिए "संसार को प्रजातन्त्र के लिए सुरक्षित बनाने की दृष्टि से" एक और युद्ध लड़ने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

अगले दस या पन्द्रह वर्षों में संसार की तानाशाही से रक्षा करने के लिए हम रूस से एक युद्ध लड़ रहे होंगे यदि हम अभी से शान्ति-पूर्ण उपायों से संसार को तानाशाही से बचाने का कार्य शुरू नहीं कर देते।

या तो आप शान्ति-काल से प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ा करते हैं या फिर आपको एक युद्ध के रूप में प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए लड़ना होगा।

शान्तिकाल में आप प्रजातन्त्र के लिए किस प्रकार लड़ सकते हैं?

उत्तर है—प्रजातन्त्रीय बनकर।

प्रजातन्त्रों के पास कुछ वर्ष हैं—शायद दस—जिनमें प्रथम परमाणु-युद्ध को होने से रोका जा सकता है। यदि इस काल के अन्त में रूस और अमरीका के सम्बन्ध ऐसे ही तनावपूर्ण और खतरनाक-जनक बने रहे जैसे कि आज हैं, तब एक और युद्ध होने की बहुत अधिक सम्भावना है। क्योंकि अमरीका की वर्तमान युद्धोपरान्त की युद्ध-विरोधी भावना तब तक हवा बनकर उड़ चुकी होगी और रूस की लड़ने की असमर्थता तब तक समाप्त हो जायगी। (स्टालिन ने स्वयं विश्व-व्यापी युद्ध के विनाश से सोवियत अर्थ-नीति के उद्धार के लिए पन्द्रह वर्ष का समय, आवश्यक-काल के रूप में माना है।)

अगले दस वर्षों में प्रजातन्त्रों को सर्वत्र ही प्रजातन्त्र का विस्तार करना और उन्हें सशक्त बनाना आवश्यक है। सोवियत संसार से होने वाले युद्ध को रोकने का केवल यही एक उपाय है।

प्रजातन्त्रों में प्रजातन्त्र के सुधार के लिए कार्यशील होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त एक ठोस योजना भी हमारे पास होनी चाहिए।

प्रजातन्त्र को समृद्ध कर इसे बचाने की योजना एकमात्र अमरीकन राजनीतिज्ञो द्वारा नही बनाई जानी चाहिए। इसके साथ ही, केवल अमरीकन लोगो को इसके सचालन का कार्य भी नही करना चाहिए। अमरीकन इतने अधिक मौज से रहते है, इतनी अधिक दूरी पर है तथा पूजीवादी उद्योगो मे उनका इतना अधिक विश्वास है कि विश्व के सन्मुख जो कठिनाइया है उनकी गहराई तक नही पहुच सकते। "स्वतन्त्र उद्योग और स्वतन्त्रता आश्चर्य-भरी वस्तुए है। क्या वे ऐसी नही ? फिर परिवर्त्तन क्यो ? यदि रूस रुकावट पैदा न करे, तब हर चीज बहुत ठीक हो सकती है।" इसलिए यदि वे कोई सुझाव पेश करते है, तब यही कि "रूस से कडाई से बरतो" और "कम्युनिस्ट दल पर रोक लगादो।" इस दृष्टिकोण का यह फल है कि ससार की सबसे महान् समस्याओ के बारे मे उचित सोच-विचार करते समय अनुदार और प्रतिक्रियावादी व्यक्ति घाटे मे रह जाते है। वे नही जानते कि सकट कितना बडा है।

स्थिति इतनी गम्भीर है कि इसके लिए एक ऊचे समाधान की आवश्यकता है। किन्तु अधिकाश राजनीतिज्ञ एक मुर्दा अवस्था को पहुँच गए प्रतीत होते है और ऐसी ही अधिकाश व्यक्तियो की अवस्था है जो कि राष्ट्रीय-शक्ति के जाल मे फसे हुए है। उच्च अधिकारियो को यह बहस करते हुए देखना कि सीमा दस मील पूर्व मे या आठ मील पश्चिम मे होनी चाहिए, एक दर्द भरा दृश्य है। चाहिए यह बात कि वे राष्ट्रीय सीमाओ को मिटाने के लिए बहस कर रहे होते। इस से भी अधिक बेचैन करने वाली यह बात होती है जब हम सरकारो को इस बात की बहस करते हुए देखते है कि जर्मनो को कितने औद्योगिक उत्पादको की स्वीकृति दी जानी चाहिए, जब कि समस्त भूमि पर लाखो नगे, बीमार, दुर्बल और वस्तुओ की कमी के कारण मरने की दशा को पहुँचे हुए लोग विद्यमान है, तब किसी भी कारणवश उत्पादन को रोकना एक अपराध है। तथापि दीखने मे समझदार लोगो ने

यह आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयता की वस्तु होगी । अच्छे व्यापार, अच्छे प्रबन्ध, अच्छे बाजारों और साधारण मनुष्यता के लिए तथा उसके अतिरिक्त शान्ति के लिए भी, दुनिया की सतह पर विद्यमान अनेक स्थानों में आर्थिक अन्तर्राष्ट्रीयता की आवश्यकता है । राष्ट्रीयता बिलकुल अपर्याप्त और पुरानी वस्तु हो गई है ।

एक-एक राष्ट्र को अलग करके धज्जियां जोड़ने का काम, चाहे वह आर्थिक हो या राजनैतिक, लाभदायक नहीं । फ्रेंच चुनावों के अवसर पर जब कि फ्रांसीसी साम्राज्यवादी नेता लिओन ब्लम १९४६ में वाशिंगटन आये, अमरीका ने जल्दी में फ्रांस को कुछ ऋण दे दिया। अमरीका यह नहीं चाहता था कि कम्युनिस्ट चुनावों में विजय प्राप्त कर ले । संभवत ऋण देना आवश्यक था । किन्तु एक विश्व-व्यापी कठिनाई का या फ्रेंच कठिनाइयों का भी सामना करने का यह कोई उपाय नहीं है । हालांकि ऋण दे भी दिया गया अब भी कठिनाइयां विद्यमान हैं ।

यूनान में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक बनावट फट रही है । इसीलिए यूनान को ऋण प्राप्त हो जाता है । टर्की में बनावट पतली पड़ती-सी दृष्टिगोचर होती है । टर्की को भी ऋण मिल जाता है। किन्तु बनावट कहीं से भी फट सकती है, क्योंकि सर्वत्र ही वही घिसी हुई बनावट है, जो कि बहुत अधिक पुरानी पड़ चुकी है तथा जिसमें पैबन्द भी बहुत से लग चुके हैं ।

भारत को लोहे की आवश्यकता है । यदि भारत अमरीका से लोहे की मिलें खरीद सके, तब भारत के लोग अधिक पैसा कमा सकते हैं और फ्रांस की अधिक वस्तुएं खरीद सकते हैं । फलस्वरूप यदि फ्रांसीसी यूनान से अधिक तम्बाकू खरीद सकें, यदि रूहर बिना किसी रुकावट के उत्पादन करे और अधिक यूनानी तम्बाकू खरीद सके, यदि यूनानी जहाज अधिक सामान ढो सकें और यदि यूनान के उत्तरीय स्लाव पड़ोसी यूनान के मामलों में हस्तक्षेप करना बन्द कर दें, तब यह सम्भव

यता स्वय भी भय और अरक्षितता का भाव पैदा करती है। इस प्रकार अपना भोजन अपने आप वन यह वढती, वडी होती तथा निरन्तर और भी खराव होती चली जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय वनने के लिए राष्ट्रीयता की समाप्ति की प्रतीक्षा आप नहीं कर सकते। स्वय अपने आप राष्ट्रीयता की भावना कभी न बुझेगी। इसकी समाप्ति तो तव ही होगी जव कि अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास हो जायगा। अन्तर्राष्ट्रीयता सुरक्षितता के भाव की स्थापना मे सहायता करती है और सुरक्षितता का भाव भय को दूर करता है। यदि भय न हो तव राष्ट्रीयता की भावना भी नहीं रहेगी। अन्तर्राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रीयता को कम कर देगी और इस प्रकार युद्ध का खतरा भी कम हो जायगा।

दूसरी आपत्ति यह की जाती है कि "जो लोग प्रजातन्त्र की स्थापना चाहते है और शक्ति के एकछत्र अधिकार से भयभीत हैं, एक महान् सरकार की स्थापना के पक्ष का समर्थन किस प्रकार कर सकते है, जव कि अपने कर्तव्यो और क्षेत्र के अत्यन्त व्यापक होने के कारण इस सरकार को अत्यधिक शक्ति को कार्य मे लाने के लिए बाध्य होना पडेगा ?"

दुनिया अमरीकन और रूसी शक्ति के विस्तार और अन्य अनेको दुर्वल देशो की स्वतन्त्रता को सकुचित होते हुए देख रही है। यह अवस्था जारी रहेगी और समस्त अपेक्षाकृत छोटे राष्ट्र दो प्रमुख शक्तियों के लिए ऐसी युद्ध-भूमिगा वन सकते है, जहा कि प्रभुत्व पाने के लिए मुकावला हो यदि दुर्वल राष्ट्र की शक्तिशाली राष्ट्रो से सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति की स्थापना न की जायगी। अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के अभाव मे एक ही राष्ट्र—यह राष्ट्र केवल या तो अमरीका हो सकता है या रूस—सारी दुनिया पर शासन करेगा और समस्त दूसरे राष्ट्रो को अपने आधीन कर लेगा। वास्तव मे यह सरकार एक महान् सरकार होगी, जिसके पास असीम शक्ति होगी। इस दुखान्त घटना के घटने से पूर्व ही और जव तक कि प्रजातन्त्रो को कार्य करने की स्वतन्त्रता प्राप्त

प्रजातंत्रवादी दुनिया अपनी वर्त्तमान गड़बड़ और गिराव की अवस्था मे इसलिए है, क्योंकि इसने आवश्यक परिवर्त्तन और सुधारों के करने से देरी कर दी। इस देर ने कम्युनिज्म को विस्तार के लिए एक सुनहरी अवसर प्रदान कर दिया। अब प्रजातन्त्रों के लिए परिवर्त्तन और सुधार आवश्यक है और इस प्रकार वे कम्युनिज्म पर रोक लगा सकते है। किन्तु कम्युनिज्म पर रोक लगाने के कार्य मे रूस सम्मिलित नही हो सकता।

कूटनीतिज्ञ रूस से बातचीत करते समय, एक ऐसी दुनिया और ऐसी सस्थाओ की सृष्टि की, जिसमे उन्हे प्रजातंत्र के फलने-फूलने और कम्युनिज्म के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने की आशा हो, चर्चा कर अपने आपको थका लेते है। क्या वे वास्तव मे समझते है कि मास्को इस काम मे उनको सहयोग देगा? क्या वे सचमुच इस बात का विश्वास करते हैं कि इन कांफ्रेसो और सौदेबाजियो से कम्युनिज्म के विस्तार की रूस की आधारभूत इच्छा परिवर्तित हो जायगी या प्रजातन्त्रवादी होने के नाते कम्युनिज्म को रोकने की उनकी इच्छा बढ जायगी?

रूस और प्रजातन्त्र एक दूसरे से उलट वस्तुओ को चाहते है। वे एक साथ कैसे चल सकते हैं? शान्ति के लिए? आपस मे जब कि शुष्क व्यवहार बर्ते जा रहे हो ऐसी स्थिति को शान्ति नही कहा जा सकता। शान्ति-काल मे भी राष्ट्र एक दूसरे से सघर्ष करते है। संघर्ष सदैव रहे है। अब भी ऐसा ही हो रहा है। आज, सघर्ष अत्यन्त तीव्र रूप धारण किये हुए हैं। यह बात कि किसी, खास अवसर पर ससार मे शांति है, इस बात की द्योतक नही कि शाति को भीतर ही भीतर नष्ट करने की चेष्टा नही हो रही। शाति का यह अभिप्राय हो सकता है, प्राय. यही अभिप्राय लिया गया है, कि दुनिया युद्ध की ओर अग्रसर हो रही है। स्पेन और चीन के अपवाद को यदि छोड दे, तब १९३६ और १९३८ मे दुनिया मे शांति थी। किंतु यह शाति नही थी। और यदि प्रजातन्त्रो को यह ज्ञान होता कि यह शांति नही, तब दूसरे

महायुद्ध को रोकने के लिए उन्होंने कुछ-न-कुछ कर लिया होता।

इसलिए इतना कह देना ही पर्याप्त नहीं कि 'मैं शान्ति चाहता हूं।" आपको इस प्रकार की शान्ति की चाहना करनी आवश्यक है जो कि युद्ध की भूमिका न हो, न युद्ध के लिए तैयारी हो। कुछ भी क्यों न हो, अब कई वर्षों के लिए हमें शान्ति मिल रही है। यह एक शारीरिक और आत्मिक थकावट से मिलने वाली शान्ति है। इस विश्राम-काल में क्या-क्या होगा? यदि यह समय राजनैतिक विरोध और युद्ध में पूर्ण रहा तो यह शान्ति नहीं है, और यह बात हम समझना चाहें तो आज अच्छी तरह समझ भी सकते हैं।

जो आदमी "शान्ति, शान्ति" कह कर चिल्लाता है उसे शान्ति और युद्ध के अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रश्न के बारे में अपनी स्थिति स्पष्ट करनी होगी। क्या उसका झुकाव है कि प्रजातन्त्र समस्त दुनिया में प्रजातन्त्र को शक्तिशाली बनाए? यदि इसका उत्तर 'नहीं' में है तो वह कम्युनिज्म के विस्तार का पक्षपाती है। इसका परिणाम होगा प्रजातन्त्र की समाप्ति होगा। यदि उत्तर 'हां' में है, यदि वह इस बात को चाहता है कि कम्युनिज्म के विरुद्ध प्रजातन्त्र राजनैतिक युद्ध में लड़े तो इस युद्ध को कम्युनिस्ट रूस या कम्युनिस्ट युगोस्लाविया या रूसी उपनिवेशों के साथ मिलकर वह नहीं लड़ सकता।

सोवियत-सरकार ने दुनिया की शान्तिकालिक राजनैतिक, फौजी, आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक समस्याओं में सहयोग करने के लिए अपनी तत्परता के, यदि कुछ हैं तो बहुत ही कम उदाहरण पेश किये हैं। जब कि सामूहिक बातों के बारे में चर्चा करना छोड़ कर सहयोग के वास्तविक उदाहरण पर हम आते हैं तो ऐसे सहयोग के उदाहरण मिलने कठिन, और वास्तविक तो प्रायः असम्भव ही प्रतीत होते हैं। ऐसी अवस्था में हम यही कहना चाहेंगे कि दुनिया एक है, प्रजातन्त्री दुनिया के संगठन और सुधार में बाधा डालने वालों को छूट नहीं दी जानी चाहिए।

एक ही मकान में बसने वाले दो परिवार आदर्श सम्बन्ध बनाकर रह सकते हैं। किन्तु यदि वे ऐसी बातों के बारे में झगड़ना शुरू कर दें कि झाड़ू लगाने की किसकी बारी है या कौन बहुत ज्यादा बिजली प्रयोग में ला रहा है, तो मित्रता की दृष्टि से उनके लिए यह अधिक अच्छा होगा कि उनमें से एक किसी दूसरे मकान में चला जाय।

जूते गांठने वाले परमाणुसम्बन्धी वैज्ञानिकों की सभा की सदस्यता प्राप्त नहीं कर सकते। एक उदारदलीय संस्था में फासिस्टों को स्वीकार नहीं किया जाता। उदारदलीय कम्युनिस्ट दल में नहीं लिये जाते। पक्षपात या निकृष्ट स्वार्थ के आधार पर किसी को सम्मिलित न करना अनुचित है। किन्तु विचारों में भिन्नता या कार्य करने की नीति में भेद होने के कारण किसी को किसी संगठन में सम्मिलित न करना, एक नित्य प्रति की अनिवार्य घटना है।

अन्तर्राष्ट्रीय सरकार से सोवियत यूनियन को अलग रखना सोवियत जनता के प्रति किसी प्रकार कि विरोध-भावना की उपज नहीं। यह तो विभिन्न प्रकार के स्वार्थों कार्य-प्रणालियों की एक साधारण स्वीकृति-मात्र है, जो कि गैर-सोवियत दुनिया के साथ रूस के सहयोग का विरोध करते हैं।

प्रजातन्त्रवादी दुनिया की एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सरकार का निर्माण, जिसमें रूस सम्मिलित न हो सोवियत-यूनियन के नागरिकों के लिए एक बहुत लाभ की वस्तु सिद्ध होगी। क्योंकि यदि प्रजातन्त्र यह समझने लग जायें कि शांति की स्थापना के लिए उनकी अपनी कठिनाइयों के प्रजातन्त्रीय समाधान की आवश्यकता है और यदि चिन्तित बना देने वाली व्यर्थ की मास्को से बातचीत के बदले इन कठिनाइयों को हल करने के लिए अपना एक संगठन बना लें तो वे ऐसी सब झूठी भावनाओं का त्याग कर देंगे कि उनकी भविष्य की सुरक्षा और शांति इस बात को बतलाती है कि रूस से युद्ध किया जाय। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय सरकार रूस को दुर्बल देशों पर अधिकार करने से भी

रोकेगी। यह अन्तर्राष्ट्रीय सरकार रूस की अपेक्षा अधिक सबल होगी। इस प्रकार रूसी-विस्तार को रोक कर तीसरे विश्व-व्यापी युद्ध को होने से बचाया जा सकेगा। एक दीर्घकालिक शान्ति रूस में भी प्रजातन्त्र को उत्पन्न कर देगी।

आज रूस और प्रजातन्त्रवादी दुनिया के बीच तनाव और परेशानियां बहुत अधिक हैं और ये बढ़ रही हैं। वे खतरनाक हैं। ये सब इस बात का नतीजा है कि दोनों दुनियाएं एक ही मकान में रहती हैं, और साझे जीवन के कारण पैदा हुई इन कुत्सित समस्याओं का हल ढूंढने की चेष्टा कर रही हैं। इन दोनों को अलग हो जाना चाहिए और तब रूस से व्यापारिक और कूटनीतिक सम्बन्ध सुधर जायेंगे।

यदि प्रजातन्त्रों के पास ऐसा कोई साधन हो जो कि उनकी अपनी कमजोरियों का हल ढूंढ सके, तो रूस का भय रूस के प्रति विरोध-भावना और रूस से युद्ध होने के विचार समाप्त हो जायेंगे। वे इस काम के करने के लिए अपना सारा ध्यान केन्द्रित कर लेंगे। इसकी सफलता का अर्थ शान्ति होगी।

शान्ति शस्त्रास्त्रों पर निर्भर नहीं, और न कूटनीति पर निर्भर है। यह तो आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक आत्म-सुधार और अन्तर्राष्ट्रीयता पर निर्भर है।

चौथी आपत्ति यह है—"संयुक्त राष्ट्रों का क्या होगा? क्या अन्तर्राष्ट्रीय सरकार संयुक्त राष्ट्रों का स्थान ले लेगी और इस तरह संयुक्त राष्ट्रों को समाप्त कर देगी?"

अमरीकन सरकार ने इस भय से कि कहीं अमरीकन कांग्रेस संयुक्त-राष्ट्रों की सदस्यता का विरोध न करे और इस प्रकार उसे वैसी ही हानि पहुंचा दे जैसी कि राष्ट्र-संघ (लीग आफ नेशन्स) से अलग रहकर उसने इससे हानि पहुंचाई थी १९१९ और १९२० में, इसके प्रचार में उसकी बढ़-चढ़कर प्रशंसा करनी शुरू कर दी। इसका फल यह हुआ कि संयुक्त राष्ट्रों के प्रति अतिशय बढ़ी-चढ़ी आशाएं पैदा हो गईं।

इसमे सन्देह नही कि इस सस्था के बहुत कीमती उपयोग हैं, किन्तु यह सस्था इतनी सुसज्जित नहीं कि प्रमुख राजनैतिक या आर्थिक प्रश्नोको अपने हाथमें ले सके। अबतक, अपने जीवन के इतने प्रारम्भिक काल मे ही, राजनीतिज्ञ इसके साथ वैसा ही व्यवहार करने लगे है, जैसा कि राष्ट्र-सघ के साथ सरकारों ने किया था। और उन्हीं पुराने कारणों मे यह व्यवहार किया जा रहा है। वे इसे उपेक्षा से देखते है। ये बडी शक्तिया ही थी, जिन्होने फासिस्ट इटली के विरुद्ध तेल और दूसरी वस्तुओं के सम्बन्ध मे दिये गए राष्ट्र-संघ के आदेशो को रद्द किया था। इस असफलता के अनन्तर स्पेन का प्रश्न लन्दन की अहस्तक्षेप कमेटी को सौंपा गया, जिसने नीचता से काम लेकर इसका उद्देश्य ही बदल दिया और फ्रान्को को विजय प्राप्त करने मे सहायता दी। १९३८ के सितम्बर मास में जैकोस्लोवेकिया में संकट पैदा होने के समय यद्यपि राष्ट्र-सघ का अधिवेशन हो रहा था, किन्तु फिर भी यह प्रश्न नेवल चैम्बरलेन और एडवर्ड दलेदियर की विन-मागी दया पर छोड दिया गया। ये लोग म्युनिख के बलि-भूमि मे पहुचे और जैकोस्लोवेकिया रूपी मेमने को इन्होने कत्ल कर दिया।

आज भी इसी प्रकार वास्तविक परीक्षा के प्रश्नो को संयुक्त-राष्ट्रों के बाहर ही सुलझाया जाता है, क्योंकि सयुक्त-राष्ट्रो के पास न तो पैसा है न पुलिस, न इसे सर्वोच्च सत्ता प्राप्त है, और न इसके पास शक्ति है।

इसकी सबसे बडी रुकावट 'वीटो' है। सान्फ्रान्सिस्को के चार्टर के अनुसार, जिसकी स्वर्ग जाने की कुञ्जी का दरवाज़ा कहकर प्रशसा की जाती है, केवल सयुक्त राष्ट्रो की सुरक्षा-कौंसिल ही आक्रमणकारी के विरुद्ध कदम उठाकर युद्ध को रोक सकती है। यह सुरक्षा-कौंसिल ग्यारह सदस्यों से बनाई गई है। पांच बडे राष्ट्र (अमरीका, सोवियत यूनियन, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस और चीन) इसके स्थायी सदस्य है तथा छ सदस्य छोटे या मझोले राष्ट्रो से लेकर कुछ थोड़े से समय के लिए नियत किये

जिस किसी ने भी उसकी आलोचना की है उसे रगडती रही है। सोवियत सरकार के प्रवक्ताओ ने राष्ट्रीय सर्वोच्च सत्ता के विचार की जबर्दस्त पैरवी की है। रूस की नई घरेलू राष्ट्रीयता को दृष्टि में रखते हुए यह बात बिलकुल स्वाभाविक ही है। जब घरेलू रूप में सोवियत लोग कम राष्ट्रवादी थे, वे राष्ट्रीय सर्वोच्च सत्ता की इतने जोरदार शब्दों मे पैरवी नही करते थे।

'वीटो' के अधिकार की समाप्ति होनी चाहिए। यह कदम सयुक्त राष्ट्रो के लिए, वास्तव मे प्रभावशाली अन्तर्राष्टीय सरकार बनाने के कार्य मे, एक आगे बढा हुआ कदम सिद्ध होगा।

कुछ लोगो का तर्क है कि बिना 'वीटो' के सोवियत यूनियन सदैव ही अपने आपको पूजीवादी राष्ट्रो के एक गठ-जोड द्वारा मतगणना के समय पराजित पायगा। 'वीटो' के अधिकार के रहने पर रूस अन्य सब शक्तियो को अवरुद्ध कर सकता है। दूसरे शब्दो मे,इस विचित्र मन्तव्य के अनुसार बहुमत द्वारा रूस को पराजित करना तो गलती हुई किन्तु केवल रूस के कारण बहुमत का एक तरफ फेंक दिया जाना एक ठीक बात हुई। यह तानाशाही का हिसाब और तर्क है। यह तो राष्टीयता के भडक उठने तथा और भी महान् रूप धारण करने वाली बात हुई। यदि रूस गैर-सोवियत शक्तियो से ऐसे ही अपरिवर्त्तनशील विरोध की आशा रखता है, तो सयुक्त राष्ट्रो का किसी भी समय काम कैसे चल सकता है ?

'वीटो' का परित्याग आवश्यक ही है। यदि रूस इस प्रश्न पर विद्रोह करे, तब वह सयुक्तराष्टो से हाथ खीच लेने के लिए स्वतन्त्र है। जब वह अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ के एक-मात्र आधार अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीयता को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जायगा, तो सयुक्त राष्ट्रो मे किसी भी समय वापिस आने पर सदैव उसका स्वागत किया जायगा।

१९३९ तक, ठीक उस समय तक जब कि मास्को ने अपने वर्त्तमान

विस्तार के ढंग का प्रारम्भ किया तथा स्टालिन ने मैक्सिम लिटविनोफ को रूस के विदेश-मन्त्री पद से हटा दिया, लिटविनोफ सामूहिक सुरक्षा के सबसे प्रमुख समर्थक और उसके एक प्रतीक थे। जेनेवा में होने वाली राष्ट्र-संघ की बैठकों में प्रमुख सोवियत-प्रतिनिधि के रूप में लिटविनोफ ने नियमित रूप से "सार्वभौमिकता" के विचार पर आक्रमण किये। आप सार्वभौमिकता या एकमत होने में इसलिए विश्वास नहीं रखते थे, क्योंकि यह विचार जर्मनी, इटली और जापान को राष्ट्र-संघ के व्यर्थ बनाने में सहायता प्रदान करता था। उदाहरण के रूप में १९३७ के सितम्बर में हुई न्योन कान्फ्रेंस में से लिटविनोफ ने जान-बूझकर इटली को बड़ी चतुराई से निकाल दिया। यह कान्फ्रेंस स्पेन के वफादारों को भेजी गई रसद को ले जाने वाले जहाजों की मुसोलिनी की "अज्ञात पन-डुब्बियों" द्वारा लूट के प्रश्नों पर विचारार्थ बुलाई गई थी। लिटविनोफ जानते थे कि इटली की उपस्थिति स्वभावतः कान्फ्रेंस में फूट डाल देगी। इटली क्योंकि उपस्थित न था, फल-स्वरूप अन्य सम्मिलित होने वाले राष्ट्रों में सहमति हो गई और कुछ समय के लिए एक ब्रिटिश-फ्रेंच देख-रेख करने वाले नौ-दल ने भूमध्य-सागर में फासिस्ट लूट रोकने में सफलता प्राप्त कर ली।

'वीटो' से सार्वभौमिकता, सर्वसम्मतता दोनों ही अभिप्रेत हैं। इसके अतिरिक्त आक्रमणशील तथा कानून की चिन्ता न करने वाले राष्ट्र के हाथ में इससे एक कोड़ा भी आ जाता है। यह तो एक राष्ट्र की, जिसका शासन एक ही व्यक्ति के हाथ में है, तानाशाही हुई। इस प्रकार का संयुक्त राष्ट्र प्रजातन्त्र का बचाव नहीं कर सकता।

संयुक्त राष्ट्रों में विद्यमान अपेक्षाकृत छोटे देश और व्यक्ति साहस-पूर्वक इस संस्था का उपयोग बड़े कार्यों के लिए करने की चेष्टा करते हैं। राष्ट्र-संघ में भी ऐसे व्यक्ति और देश विद्यमान थे। किन्तु चोटी के राजनीतिज्ञ एक दूसरे को परेशान कर देने के लिए प्रायः संयुक्त राष्ट्र को उपयोग में लाते हैं।

ऐसे सयुक्त राष्ट्र के बनाने मे क्या समझदारी है, जो कि इस दुनिया की प्रमुख बीमारियो का इलाज करने के लिए कुछ नहीं कर सकता ? यदि रूस यह सिद्ध कर दे कि वह शाति और स्वतन्त्रता को प्यार करता है, तब रूस को साथ मिलाकर सयुक्त राष्ट्र बनाना अधिक अच्छा है। किन्तु यदि रूस उन कामो मे अडचन पहुचाए—जैसी कि सयुक्त राष्टो के भीतर और बाहर अडचने वह पहुचा रहा है—जो कि मृत्यु से बचने के लिए हमारी दुनिया को पूरे उत्साह से करने आवश्यक हैं, तब रूस के बिना ही सयुक्त राष्ट्रो का निर्माण अधिक अच्छा है।

जब तक कि सयुक्त राष्ट्र प्रजातन्त्रों के सुधार का एक साधन नहीं बन जाता, रूस इसे प्रजातन्त्रो में फूट डालने और अन्ततोगत्वा इन्हें कुचल देने के साधन के रूप मे प्रयोग करेगा।

बिना किसी प्रकार की देर किये संयुक्त राष्ट्रो के चार्टर मे सुधार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार सयुक्त राष्ट्रों को समृद्धि, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और शान्ति की प्रगति के लिए एक प्रभावशाली अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के रूप मे परिवर्तित किया जा सकता है।

आज सयुक्त राष्ट्र एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार नहीं है। इसका पुनर्निर्माण होना आवश्यक है, ताकि यह एक ऐसी सरकार बन सके। यह बहुत सम्भव है कि जिस क्षण से ससार के राष्ट्र सयुक्त राष्ट्रो को नया स्वरूप प्रदान करना प्रारम्भ कर दे, वे एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की राह पर होगे जिसमे रूस सम्मिलित न हो। यह खेदजनक बात है। किन्तु इसका और कोई विकल्प ही क्या है ? क्या अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की स्थापना से हम परहेज कर सकते हैं और इस प्रकार प्रजातन्त्र और शान्ति के बचाने के अत्यधिक आवश्यक काम से अपने-आपको वञ्चित रख सकते हैं ? यह तो सयुक्त राष्ट्रो में नाम-मात्र की अडचने डालने वाली, सदस्यता के लिए रूस को बहुत बडी कीमत देने वाली बात हुई।

एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार के बिना मानवता अव्यवस्था की ओर

विदेश-मन्त्री एण्डेरी ए० ग्रोमिको ने इसलिए इस असीम निरीक्षण पर आपत्ति की थी, क्योंकि 'यह बात राज्य की स्वतन्त्रता और सर्वोच्च सत्ता के अनुकूल नही हो सकती ।" आपने यह भी कहा—"सयुक्त-राष्ट्र सर्वोच्च सत्ता-प्राप्त राष्ट्रो की एक सस्था है। इसके सदस्यो की सर्वोच्च सत्ता और स्वतन्त्रता की जडो मे विनाश के बीज बोना उस आधार को विनष्ट करना है जिस पर सयुक्त-राष्ट्रो का अस्तित्व है।" किन्तु सयुक्त राष्ट्रो ने युद्ध की धमकियो पर विचार करते समय जिस नपुंसकता का परिचय दिया है उसका आधार भी यही सर्वोच्च सत्ता है।

परमाणु-बम के नियन्त्रण के लिए बनाई गई 'बारूक योजना' की रूस द्वारा अस्वीकृति ने अमरीकन विदेशीनीति मे एक परिवर्त्तन पैदा कर दिया है। इसके फलस्वरूप यूनान और टर्की को कम्युनिस्ट विस्तार से बचाने की आवश्यकता के सम्बन्ध मे ट्रूमैन को घोषणा करनी पडी। यदि रूस परमाणु-बम के अमरीकन अधिकार मे होने पर इससे डरता था, तो वह 'बारूक योजना' को, जिसके अन्तर्गत अमरीका तथा अन्य सब देश भी न तो परमाणु-बम अपने पास रख सकते हैं, न उन्हे बना सकते है, स्वीकार कर लेता।

किन्तु 'बारूक-योजना' रूस द्वारा परमाणु-बमो के निर्माण को सदैव के लिए असभव बना देती। मास्को को यह बात नही जची।

सोवियत् सरकार परमाणु बम पर अधिकार करना चाहती है। इस अधिकार को छोडने के बदले क्रेमलिन ने परमाणु-बम अमरीकन अधिकार मे रहने देना स्वीकार कर लिया। क्यो ? इसके कई सम्भव कारण हैं। स्टालिन जानते हैं कि एक प्रजातन्त्र से, खासकर अमरीका से, जिसके कि लोग हिरोशिमा और नागासाकी के विरुद्ध परमाणु-बम के प्रयोग के बारे मे अपने-आपको दोषी समझते है, इस बात की आशा नही की जा सकती कि वह शान्तिपूर्ण देशो पर परमाणु-शस्त्र बरसायगा। स्टालिन इसीलिए अमरीका के परमाणु बमों से नही डरते। किन्तु वे सम्भवतः

(सयुक्त राष्ट्रो ने इस कार्य के लिए सयुक्त राष्ट्रों की आर्थिक, सामाजिक व सास्कृतिक संस्था की स्थापना की है, किंतु रूस इसमे सम्मिलित नही हुआ है।) ऐसी भी आशा की जाती है कि यह मानवीय अधिकारो की रक्षा करेगी। यह अन्तर्राष्ट्रीय जल-मार्गों (दर्रे दानियाल, स्वेज, पनामा राइन इत्यादि) की भी देख-रेख करेगी और इस प्रकार झगडो और ईर्ष्याओ को समाप्त कर देगी। यह सरकार उन सब महत्वपूर्ण कार्यो को करेगी जिन्हे कि कोई भी राष्ट्रीय सरकार नही कर सकती।

अन्तर्राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रीय सरकारो की शक्ति कम करने का एक कारण होगी। इस प्रकार यह राष्ट्रीय तानाशाहियों की सम्भावना को भी कम कर देगी। इसके अतिरिक्त यह प्रमुख औद्योगिक कारखानों की भी स्वामी होगी। उदाहरण के रूप मे रूहर को रख सकते है। अधिकाश यूरोपियन निश्चित रूप से इसको अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल या कम्पनियो या अमरीकन पूजी के स्वामित्व की अपेक्षा अधिक पसन्द करेगे।

अपनी आर्थिक हलचलो के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सरकार को इतनी पर्याप्त आमदनी हो जायगी कि अपने प्रतिदिन के खर्च को चला सके।

इस प्रारम्भिक दशा मे अन्तर्राष्ट्रीय सरकार प्रत्येक राष्ट्र द्वारा पृथक् रूप मे दी गई सर्वोच्च सत्ता का एक भण्डार होगी। इसमें सयुक्त राष्ट्रो की विभिन्न कमेटिया और विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारी सस्थाएं, एक सूत्र में पिरोई हुई सम्मिलित होगी।

किन्तु एक सरकार तब तक वास्तविक सरकार नहीं हो सकती, जब तक कि यह लोगो द्वारा न चुनी जाय और इसके बाद जब तक कि इन लोगों पर लागू किये जाने वाले कानूनो को यह तैयार न कर ले। २३ नवम्बर १६४५ को बृटिश विदेशी-मन्त्री अर्नेस्ट बेविन ने बृटिश लोक-सभा मे जो प्रस्ताव पेश किया था, उसकी दलील यही थी। यह एक ऐतिहासिक प्रस्ताव था। आपने कहा—"हमे एक ऐसी विश्व-असेम्बली बनाने के लिए, जिसका चुनाव सीधे रूप मे विश्व की समस्त जनता करे,

है। यही वह चाहता भी है। प्रजातन्त्रो का बटवारा मास्को को प्रजा-तन्त्र के विनाश में सहायता देता है।

रूस को साथ लेकर चलते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की स्थापना लगभग असम्भव है। रूस के बिना यह बात व्यवहारिक रूप मे सभव हो जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय सरकार इतनी अधिक और इतनी स्पष्ट सामग्री और रक्षा-सम्बन्धी लाभ प्रदान करेगी कि मास्को की मुट्ठी मे आये हुए अधिकाश देश स्वय ही इसमे सम्मिलित हो जायगे। किन्तु तब तक वे अपने रास्ते पर भी चल सकते हैं, जब तक कि अन्तर्राष्ट्रीय सरकार मे सम्मिलित होने वाले लोग, इसके सदस्य होने मे बुद्धिमत्ता है इस बात का, उन्हे विश्वास न दिला दे। रूसी मण्डल मे सम्मिलित राष्ट्र भी इसी प्रकार इसमे सम्मिलित हो सकते हैं और मास्को के बदले से बचने के लिए रक्षा प्राप्त कर सकते है।

अन्तर्राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होते ही तत्काल समस्त वातावरण बदल जायगा और प्रजातन्त्रीय दुनिया मे एक अद्भुत सामजस्य पैदा हो जायगा। यह राष्ट्रो और व्यक्तियो के लिए एक पौष्टिक वस्तु होगी। अगले महायुद्ध के बारे मे आज की दुनिया का स्थायी भय स्त्रियो, पुरुषो और देशो को बीमार बना देगा, यदि शीघ्र ही उन्हे कोई ऐसा चालू प्रबन्ध न दिखाई दे जो कि युद्ध को रोकने और इसके कारणों को मिटाने का विश्वास न दिलाता हो। एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार ही केवल यह कार्य कर सकती है।

एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार प्रजातन्त्रवादी दुनिया मे कम्युनिज्म की शक्ति को कम कर देगी। सर्वत्र ही कम्युनिस्ट राष्ट्रवादी है। वे विदेशी खतरे से अपने देश की रक्षा करने वालो के रूप मे अपने-आपको उपस्थित करते हैं। इससे उन्हें अनुयायी मिल जाते हैं। उदाहरण के रूप मे फ्रास मे कम्युनिस्ट इस बात का दावा करते हैं कि वे जर्मनी के विरुद्ध रक्षक के रूप मे है, और यह भी कि यदि फ्रांस कम्युनिस्ट हो

जायगे। गैर-सोवियत् दुनिया,और मेरा तो विश्वास है कि रूस के लोग भी सुख की सास लेगे।

दूसरे विश्व-व्यापी युद्ध को तलवारों और बन्दूको के बल पर नहीं जीता गया। इसी प्रकार निकम्मे विचारो के बल पर प्रजातन्त्र के लिए लडे जाने वाले राजनैतिक युद्ध को भी जीता नही जा सकता। परमाणु-वाद, विद्युत् कणवाद और भाप की चालक शक्ति के इस युग मे अन्त-र्राष्ट्रीयता अनिवार्य है। राजनीति को विज्ञान के साथ-ही-साथ प्रगति करनी आवश्यक है।

रूस कम्युनिस्ट दलों और फासिज्म के लिए राष्ट्रीयता को अपनाना बिलकुल ही उचित है। राष्ट्रीयता भय, घृणा और ऐसी व्यर्थ की इच्छाओं को पैदा करती है, जो कि तानाशाहियों का भोजन होती हैं।

सोवियत् रूस मे राष्ट्रीयता की सृष्टि इसीलिए की गई है कि अपने और बाहरी दुनिया के बीच के अन्तर का उन्हे बोध हो जाय। आदमी और आदमी के बीच भाई-चारे से सम्बन्धित कोई भी विचार स्टालिनवाद का अन्त कर देगा।

जब कि राष्ट्रीयता के लिए स्टालिन ने अन्तर्राष्ट्रीयता का त्याग कर दिया, तब इसके साथ ही उन्होने रूस के बिना-सुधरे यूनानी कट्टर गिरजे को भी पहले के समान स्थापित कर दिया और सामन्तशाही शूरमाओं, राजाओं और ज़ारो के चारो ओर भी रहस्यभरी पवित्रता का वातावरण चित्रित्र करने की चेष्टा की। ये सब बातें साथ-ही-साथ चलती है।

राष्ट्रीय कम्युनिज्म भूतकाल की एक प्रतिक्रियावादी वस्तु है। यह प्रगतिशील अन्तर्राष्ट्रीय प्रजातन्त्र के सामने उससे अधिक देर तक नहीं ठहर सकती, जितनी कि देर तक बन्दूकें परमाणु बमो को रोक सकती हैं।

अमरीकन राष्ट्रीयता और रूसी राष्ट्रीयता के बीच सघर्ष होने पर एक-राष्ट्रीयता की विजय और समस्त ससार-भर मे एक देश की ताना

चौदहवाँ अध्याय

अपना हृदय टटोलें

प्रजातन्त्रीय दुनिया के सामने जो काम है वह प्रजातन्त्रों को संगठित करना और प्रजातन्त्र के विचारों को समृद्ध करना है। ऐसा करना, स्टालिनवाद द्वारा भीतर और बाहर से किये गए हमलों से, इसे मुक्त कर लेना होगा। तीसरे विश्व-व्यापी युद्ध को रोकने का यह शांतिपूर्ण, सबसे अच्छा और सम्भवत. एक-मात्र मार्ग है। सोवियत रूस से अपने सम्बन्ध अधिक अच्छे बनाने का भी यह मार्ग है।

परमाणु-शक्ति और हवाई यातायात जातिगत राष्ट्रों की पुरानी भावना को चकनाचूर कर रहे हैं। वास्तव में परमाणु-शक्ति अनेक अर्थों मे विस्फोटक सिद्ध हो सकती है। यह आर्थिक पद्धति को भी बदल सकती है। औपनिवेशिक दुनिया के लोगो की जागृति भी इसी प्रकार वस्तुओं के रुप को परिवर्त्तित कर रही है। प्रजातन्त्रवादी दुनिया मे सुधारों की आवश्यकता है। रूस तो केवल मात्र इस क्रमिक प्रगति मे तीव्रता ले रहा है।

मै नही समझता कि बोल्शेविक रूस अपनी साम्राज्यवादिता, राष्ट्रीयता, तानाशाही को रखते हुए तथा सांस्कृतिक, औद्योगिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अपेक्षाकृत पिछड़ा होते हुए इस योग्य है कि वह गैर-सोवियत दुनिया को बहुत अधिक कुछ प्रदान कर सके।

एक औसत रूसी, चाहे वह ज़ारवादी हो या सोवियत, यूरोप से प्रेम और घृणा दोनों ही भाव रखता है। है तो यह घोड़े-गधे को एक बराबर करने जैसी बात, किन्तु अधिकांश मे रूसियो के बारे में यह बात ठीक

समझते है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति का यही रास्ता है। किन्तु यह व्यक्तिगत और राष्ट्रीय दोनो प्रकार की स्वतत्रता को खोने का मार्ग है। स्टालिन-वाद के उपायों का अनुकरण करके वे केवल-मात्र स्टालिन से पराजित हो सकते है, जिन्होने कि इन उपायो मे पूर्णता प्राप्त कर ली है।

कम्युनिस्टो की पूर्णतया चकना-चूर कर देने की चालें और कम्यु-निस्ट-धक्का-दस्ते कमजोर व्यक्तियो या उदारदल वालो और मजदूर पक्षियो के लिए, जो कि ये अनुभव करते हैं कि उन्हे बहुत कम सफलता मिल रही है, प्राय विनाशक प्रलोभन होते हैं। ये लोग भी कभी-कभी एकतन्त्रवादियो के सगठन करने के ढ गो और—"नियन्त्रण या डिसि-प्लिन" की नकल करने के लालच मे आ जाते है। अर्थात् बडी और शोर-गुल से पूर्ण सभाओं, फौजो की कूचों, कठोर और अतिशयोक्तिपूर्ण प्रचार तथा विरोधियों की बेलगाम निन्दा के फेर मे वे पड जाते है। इसी प्रकार ही नई एशियाई सरकारे और अस्थिर यूरोपीय सरकारें भी सोच सकती है कि वे सफलता प्राप्त कर लेगी, यदि वे अपने बाहु-दण्डो को फुला ले, शक्ति का पशुता के साथ प्रयोग करे और अपने "शक्ति के प्रवाह" को इस तरह साबित कर सकें कि वे स्थितियो का सामना कितनी जल्दी और कितने उत्साह से कर सकती हैं।

प्रजातन्त्रो की समस्त सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक सम-स्याओ की जड मे एक समस्या है। यह समस्या नैतिक है, अर्थात् देशो और व्यक्तियो के आपसी अच्छे सम्बन्धो की समस्या। इस विषय मे रूस या तो बिलकुल ही कुछ नहीं सिखा सकता या बहुत ही कम सिखा सकता है, क्योंकि स्टालिनवाद अनैतिक है।

जनरलिस्सिमो स्टालिन से कुछ सीखने के स्थान पर प्रजातन्त्र महात्मा गान्धी से सीख सकता है। प्रजातन्त्र को गान्धी से अपने मे जो सर्वोत्कृष्ट वस्तु है, उसके प्रति भक्ति की भावना मिल सकेगी। स्टालिन का अनुकरण करके प्रजातन्त्र स्वय अपना अस्तित्व ही खो बैठेगा।

प्रजातन्त्रवाद सदैव ही अपूर्ण था, फिर भी यह भली प्रकार काम

तानाशाही को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के हडपने की चाहना मे सक्रिय या निष्क्रिय सहायता देनी प्रजातन्त्र के सिद्धात के अनुकूल बात है ? क्या बडी शक्तियों के लिए छोटी शक्तियों की सुरक्षा को बलि चढा अपनी सुरक्षा को प्राप्त करने की चेष्टा प्रजातन्त्र के अनुकूल है ? क्या वे यह नहीं जानते कि किसी प्रदेश विशेष मे कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती ? सयुक्त राष्ट्रो मे 'वीटो' का बडी शक्तियों को अधिकार क्या प्रजातन्त्र के अनुकूल है ? क्या उपनिवेशो मे उठती हुई स्वतन्त्रता की लहरों को रोकना प्रजातन्त्र के सिद्धांतों के अनुकूल है ? क्या 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाला न्याय प्रजातन्त्रीय है या जगली कानून है ? क्या कूटनीतिज्ञ मोटे तौर पर उन सब देशो को जो कि धुरी राष्ट्रों द्वारा आक्रमण होने पर लडाई मे सम्मिलित हो गए "शान्ति-प्रिय' शब्द कहकर सम्बोधित करने से बाज आयगे और इस शब्द का प्रयोग केवल उन्ही राष्ट्रो के लिए करेंगे जो कि ठीक ढङ्ग पर अपनी सर्वोच्च राष्ट्रीय सत्ता के एक भाग को एक अन्तर्राष्ट्रीय सरकार मे घुला-मिला देने को तैयार हो ?

प्रजातन्त्रवादी दुनिया तब तक फल फूल नही सकती, जब तक कि वृटिश मजदूर-सरकार सफलता नहीं प्राप्त करती। अमरीका का तमाम सोना और समस्त सामान पूर्वीय आधी दुनिया में कम्युनिज्म को रोकने मे पर्याप्त नही होगे, यदि उन्हे यूरोप मे इ ग्लैंड का और एशिया में भारत का निकट और बराबर'का सहयोग न मिले। यूरोप और एशिया में तब तक कम्युनिज्म पराजित न होगा, जब तक कि अमरीका सोश-लिस्ट और मिली-जुली अर्थ-नीति रखने वाले राष्ट्रो से मैत्रीपूर्ण या कम-से कम सहनशीलता का सम्बन्ध नही अपना लेता। अब जब कि इ ग्लैंड मे बेकारी का सकट दीर्घकालिक मनुष्य-शक्ति की कमी के कारण दब गया है, वृटिश ट्रेड यूनियनो को विदेशी मजदूरो के प्रवास के विरुद्ध अपने विरोध की समाप्ति कर देनी आवश्यक है। फ्रांस को इस बात की जानकारी आवश्यक है कि एक अनुत्पादनशील, दुखी और

व्यक्ति और बे-उसूले, रिश्वतखोर, राजनीतिज्ञ एक राजनैतिक दल पर अधिकार रखते हो, और जहां कि लोगो के प्रतिनिधि के रूप मे चुने गए व्यक्ति उच्च वेतन भोगी पत्रकारो की बात बहुत अधिक ध्यान से सुनते हो वहा प्रजातन्त्र एक तमाशा बन जाता है।

क्या एक सरकार अल्पमत जाति से सम्बन्धित अपने निवासियो को निकाल देती है? क्या यह पीडितो और सकट मे पडे लोगो को शरण-गृह प्रदान करने के अधिकार देने से इन्कार करती है? यदि हा, तो ऐसी सरकार प्रजातन्त्रवादी सिद्धान्त के विरुद्ध जा रही होती है।

जो व्यक्ति हमसे सहमत हो उन्हे स्वतन्त्रता देनी आसान है। प्रजातन्त्र की परीक्षा तो उन लोगों की आजादी है जो हमसे सहमत न हो। क्या व्यक्तियो या दलो को अपने विचारो के लिए दण्ड भुगतना पडता है और क्या इन विचारो को प्रकट करना वे कठिन या असम्भव अनुभव करते है? यह तो स्टालिनवाद है। हिटलर, मुसोलिनी और जापानियो ने यही सब कुछ तो किया था। फ्राको आज भी यही कर रहा है। पाल रोबेसन जो चाहता है उसे वह कहने दो या गाने दो। प्रजातन्त्र के सम्बन्ध मे उसकी आलोचना को प्रजातन्त्रवादी स्वतत्रताएं प्रदान करके आप कम कर देते हैं। रूस मे स्टालिनवाद के विरुद्ध वह न बोल सकता है, न गा सकता है। आप उसे यह बता दीजिए और यह बात उसके दोस्तों को भी बता दीजिए। हो सकता है कि आप प्रजातन्त्र के पक्ष में उनका हृदय परिवर्तित कराने मे सफल हो जाय। कुछ भी क्यो न हो, आप स्वतन्त्रता मे विश्वास रखते हुए किसी की स्वतन्त्रता नही छीन सकते।

भूख से पीडित, बेकार या चाहते हुए भी शिक्षा प्राप्त करने मे असमर्थ कोई भी व्यक्ति पूर्णतया स्वतन्त्र नही होता। जो बस्तिया बुरी सेहत, अपराध और अनैतिकता को पैदा करती हैं, प्रजातन्त्र के सिद्धात के अनुकूल नही। एक ऐसा प्रजातत्र जो अपने शिक्षको को उचित से कम वेतन देता है, प्रजातन्त्र की सेवा नही करता। पैसे के बिना ही

प्रजातन्त्र उतना ही ठोस हो सकता है जितना कि प्रत्येक व्यक्ति इसे ठोस बनाना चाहता है।

लौग ब्रीच, कैलीफोर्निया, मे एक भोजन के अवसर पर बुलाई गई बैठक मे मै स्टालिन के रूस के विरुद्ध राजनैतिक युद्ध के बारे मे बोल रहा था और मुझे गान्धी का यह विचार याद आगया कि आधुनिक दुनिया "प्राप्त" करने पर बहुत अधिक ध्यान केन्द्रित करती है तथा "बनने" पर बहुत कम। महात्मा का मन्तव्य है—"रुको और बनो।" कार्यवाही के बाद एक व्यक्ति मेरे पास आया, जिसने चिकित्सक के रूप मे अपना परिचय दिया।

उसने कुछ उत्तेजित-सा होकर मुझ से पूछा—"एक औसत नागरिक क्या कर सकता है?"

मैने कहा—"अच्छा! आप प्रतिदिन पचपन या अस्सी मरीज़ो को देखते हैं।"

"मैं अपनी फीस घटा दूंगा।" उसने घोषणा की।

प्रजातन्त्र के लिए जो राजनैतिक युद्ध लड़ा जा रहा है, उसे डाक्टर समझ गया था।

न्ययूार्क मे एक शाम केन्द्रीय बाग के पश्चिम मे ऊपर की ओर की सडक पर मै दो युवा बालकों को भारी, ताजी गिरी, बरफ को एक दूकान के सामने की पटरी पर से फावडों से हटाते हुए देखने के लिए रुका। वे परिश्रम पूर्वक काम कर रहे थे। उन दोनों में से जब एक ने एक क्षण के लिए अपनी कमर सीधी की, तब मैंने पूछा—"तुम्हे यह काम करने को किसने लगाया है?" दूकान बन्द थी।

"किसी ने भी नही। यह काम हम यू ही कर रहे हैं।" उसने कहा।"

मैंने उन्हें कुछ पैसे देने चाहे। उत्तर मे उन्होंने कहा—"नही, धन्यवाद, हम स्काउट हैं।"

क्या ये लोग बडे होने पर इसी प्रकार अपनी जाति की सेवा करने

सहनशीलता के लिए आप कोई कानून नहीं बना सकते। केवल प्रजातन्त्र का उल्लेख कानूनी पुस्तकों मे होना इस बात का पर्याप्त सबूत नहीं कि यह कोई वास्तविक वस्तु है। वास्तविक जीती-जागती वस्तुएं अपने प्रतिक्षण के व्यवहार से अपनी वास्तविकता को सिद्ध करती हैं।

गान्धी मे न कोई घृणा, न शत्रुता, न विद्वेष और न किसी भी प्रकार की नाराजगी थी। तीस वर्ष तक वे बृटिश साम्राज्य से किसी अंगरेज के विरुद्ध कभी भी कोई कडवा शब्द बोले बिना लडे। उन्हीं वायसरायो के,जिन्होंने उन्हे जेल मे डाला, वे दोस्त बनकर रहे। वे व्यक्तियो का विरोध नही करते थे बल्कि पद्धति का विरोध करते थे। उनके उपाय ने उन्हे अभेद्य बना दिया। इस उपाय ने उन्हे अत्यधिक मजबूत बना दिया।

मार्च १९४७ मे, बिहार प्रात में हुई एक प्रार्थना-सभा मे गान्धी ने कहा था—"मैं जमीदारी पद्धति का प्रेमी नही हूं। इसके विरुद्ध मैं प्राय बोल चुका हूं। किन्तु मैं स्पष्टतया स्वीकार करता हू कि मैं जमीदारो का कोई दुश्मन नही हू। मेरा कोई शत्रु नहीं है। आर्थिक और सामाजिक पद्धतियों मे निस्सदेह जिनमे खराबिया बहुत हैं, सुधार करने का सबसे अच्छा उपाय आत्म-पीडा के प्रशस्त पथ की ओर अग्रसर होना है। इस रास्ते से किसी प्रकार भी हट जाने का परिणाम केवल बुराई की उस शक्ल को बदल देना होगा, जिसको हिंसापूर्वक खत्म करने की कोशिश की गई हो।"

बिहार के इसी दौरे के दिनो मे,जो कि मुसलमानो से बुरा व्यवहार करने की खराबी से हिन्दुओ को पवित्र बनाने के लिए किया गया था, गांधी ने एक प्रार्थना मे बताया कि मुझे एक पत्र मिला है जिसमें मुझे गालिया दी गई हैं। उन्होने घोषणा की—"यदि एक व्यक्ति मुझे गाली देता है, तो गाली का जवाब गाली से देने में मुझे कुछ फायदा नहीं मिलता। खराबी के जवाब में की गई खराबी, इसमे कमी करने के स्थान पर केवल इसे और भी बढ़ा देती है। यह तो एक सार्वजनिक

को। भौतिक सुख, शक्ति और घमण्ड के लिए पैसे का जोडना एक ऐसी व्यक्तिगत बीमारी है,जो कि फैलकर सम्पूर्ण समाज की एक बीमारी बन जाती है। यदि आदमी इस बात को स्पष्टतया देख सके (और वे देख सकते है यदि वे अपने-आपसे पूछे कि यह सब कुछ क्यो किया जा रहा है और इस प्रश्न का उत्तर ईमानदारी से दें), तब गुणो के सम्बन्ध मे एक विभिन्न भावना प्राप्त करने की उनसे सभावना की जा सकती है। आज अधिकाश लोगो के लिए पैसा सबसे अधिक कीमती वस्तु है। पैमाना और मापदण्ड यह है—मैं अपने आपको लखपति के समान अनुभव करता हू।"

अन्तिम गुण के रूप मे पैसे पर अत्यधिक बल देने से व्यक्तित्व की समाप्ति हो जाती है। आधुनिक व्यक्तिवाद का आधार 'एक व्यक्ति के पास क्या है' इस पर होने तथा 'वह क्या है' इस पर न होने के कारण सकट मे पडा हुआ है। ये दोनो बाते सदैव एक ही नही होती।

पैनसिलवानिया की तैल-सम्पत्ति को "भद्दे ढग के" व्यक्तिवादियों ने नष्ट कर दिया। पश्चिमी अमरीका की लकडी को इन्होने बरबाद किया और अब भी कर रहे है। उन्होने अपने-आपको धनी बना लिया और जाति को दरिद्र बना दिया। पूजीवादी व्यक्तिवाद योग्य, भली प्रकार शिक्षित और उद्योगी व्यक्तियो को पुरस्कार देता है, किन्तु यह लूट का माल उन लोगों मे भी बाटता है जो मजबूत, चालाक और बे-उसूले होते है।

गाधी का व्यक्तिवाद अहिसा मे अपने विश्वास की उपज है। शक्तिशाली बुराई से बिना कुछ लिये केवल न्याय की भावना और अपने निश्चय के बल पर यह टक्कर लेता है। जब गाधी पैसे की शक्ति से टक्कर लेते थे तब वे पूजीवाद-विरोधी होते थे। जब उनकी टक्कर राज्य की शक्ति से होती थी वे प्रजातन्त्रवादी बन जाते थे।

गान्धी स्टालिन के विष को उतारने वाले विष है, क्योंकि महात्मा मजबूत सरकार के विरुद्ध व्यक्ति की रक्षा के प्रतीक है। ब्रिटिश साम्राज्य

अधिक दयालु, अधिक ईमानदार,अधिक मैत्रीपूर्ण अपने से भिन्न लोगों के साथ अधिक भाईचारे की भावना से भरा होने तथा अधिक सार्वजनिक भावना से पूर्ण होने की माग करता है। कुछ लोग उत्तर देते है "नही, यह तो बहुत अस्पष्ट माग है।" ये तब तक अस्पष्ट है जब तक कि सुबह उठने के बाद आप पहले व्यक्ति से भेट नहीं करते।

अध्यापक, विद्यार्थी, सरकारी अफसर, कारखाने के स्वामी, जमीदार, दफ्तर के मैनेजर, कलाकार, सम्पादक, बस चलाने वाला, पुलिस वाला, दूकानदार गाहक, मजदूर यदि चाहें तो प्रतिक्षण अपने और दूसरे लोगो के सुख के लिए कुछ-न-कुछ कर सकते है। जिन लोगो के पास धन और शक्ति है वे अपने वर्तमान आर्थिक ढाचे के अन्तर्गत या इसमे सुधार कर जीवन के रहन-सहन के ढग मे सुधार कर सकते है।

बहुत से लोग अपने साथियो से उससे भी कही अच्छा व्यवहार करते हैं जितना कि कानून या अपने व्यवहार या अन्य सम्बन्धो के लिए आवश्यक हो। ऐसा अपने चरित्र के भले होने के कारण वे करते है। प्रत्येक व्यक्ति आज जिस प्रकार बरत रहा है, उससे अच्छी तरह बरत सकता है। यदि अपने और समाज के सुधार के प्रत्येक अवसर को हम खोजे और उससे लाभ उठाए, तब वर्त्तमान पराजित मनोवृत्ति खत्म हो सकती है और लोग यह कहते नहा रहेगे—"मै इस बारे मे कुछ नहीं कर सकता। यह मेरे बस की बात नही है।"

गान्धी जी का व्यक्तिवाद मनुष्य के प्रति विश्वास मे आधारित है। "करो या मरो" यह उनका प्रिय-नारा रहा है। और क्योंकि वे मरना नही चाहते थे उनका मन्त्र "करो" हुआ जो लोग ऐसा कहते हैं कि वे इस बारे मे कुछ नही कर सकते प्राय ऐसे लोग होते हैं जिन्होने कभी कोशिश न की हो। हमारे चारो ओर जो कष्ट बिखरे हुए है वे या तो ऐसे सामाजिक घाव हैं जिनकी देख-भाल की जानी चाहिए, या राजनीति है जिसको पवित्र बनाने की आवश्यकता है, या ऐसे अन्याय हैं जिन्हें दूर